गुरुत्तं

भाग–VII

प्रवचनकार

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी

आचार्य श्री १०८ वसुनंदी जी मुनिराज

प. पू. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज के 30वें दीक्षा दिवस के अवसर पर प्रकाशित

कृति : गुरुत्तं भाग-7

मंगलाशीष : श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानंद जी मुनिराज

प्रवचनकार : आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी मुनिराज

संपादन : आर्यिका 105 वर्धस्वनंदनी

प्राप्ति स्थान : निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला, जम्बूस्वामी तपोस्थली बौलखेड़ा, कामॉ, भरतपुर (राजस्थान)

संस्करण : प्रथम सन् 2018

प्रतियाँ : 1000

मूल्य : स्वाध्याय

प्रकाशन : निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला

मुद्रक : ईस्टर्न प्रेस
नारायणा, नई दिल्ली-110028
दूरभाष: 011-47705544
ई-मेल: info@easternpress.in

अनुक्रमणिका

1. सर्वोदयी तीर्थ..... 7
2. परिग्रह..... 14
3. आत्म विश्वास..... 24
4. सुसंस्कार..... 32
5. सकारात्मक सोच..... 40
6. जो होता है वही अच्छा..... 46
7. अच्छे कार्यों में टालने की बात नहीं..... 54
8. व्यवहारिक जीवन..... 63
9. वृद्ध ही समृद्ध..... 71
10. मुस्कुराओ तो ऐसे..... 80
11. कैसे बचें शत्रुओं से..... 86
12. जीवन के छः आयाम..... 94
13. योग नहीं उपयोग बदलो..... 103
14. जीवन का गणित..... 113
15. प्रभु भक्ति..... 122
16. चित्त की पवित्रता..... 130
17. किसकी शोभा किससे..... 136
18. भय के कारण..... 143
19. पाप के प्रत्यय..... 150
20. नौ लाख की नौ बातें..... 156
21. बंधन..... 162

पुरोवाक्

सम्यक्त्व के साथ होने वाला ज्ञान, सम्यक्ज्ञान संज्ञा से अभिहित होता है। मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय एवं केवलज्ञान ये सम्यग्ज्ञान में ही निहित हैं। इनमें सभी ज्ञान तो स्वार्थ ज्ञान हैं किन्तु मात्र श्रुतज्ञान ऐसा है जो परार्थ भी है। बिना श्रुतज्ञान के किसी भी जीव का कल्याण संभव नहीं है। श्रुतज्ञान का विषयभूत अर्थ श्रुत है। 'श्रुत' शब्द की निरुक्ति सर्वार्थसिद्धि में इस प्रकार है-''श्रूयते अनेन तत् श्रृणोति श्रवणमात्रं वा श्रुतम्'' जिसके द्वारा पदार्थ सुना जाता है, जो सुनता है या सुनना मात्र श्रुत कहलाता है। यह श्रुत शब्द सुनने रूप अर्थ की मुख्यता से निष्पादित है तो भी रूढ़ि से उसका वाच्य कोई ज्ञान विशेष है। आचार्य भगवन् अकलंक देव स्वामी कहते हैं जैसे कुशल शब्द का व्युत्पत्ति अर्थ 'कुशान् लातीति कुशन्:' अर्थात् कुश को लाने वाला होता है फिर भी उससे रूढ़िवशात् चतुर या निपुण अर्थ ग्रहण किया जाता है उसी प्रकार श्रुत शब्द का भी व्युत्पत्ति अर्थ सुना हुआ है किन्तु उससे श्रुतज्ञान ही ग्रहण किया जाता है।

श्रुतज्ञान ही व्यक्ति के कल्याण में सर्वप्रथम निमित्त बनता है। श्रुतज्ञान रूप कारण से केवलज्ञान रूप कार्य की उत्पत्ति होती है। तभी तो आचार्य भगवन् श्री विद्यानंदी स्वामी के अनुसार भी संपूर्ण पदार्थों को जानने वाले केवलज्ञान की उत्पत्ति पूर्ववर्ती द्वादशांग श्रुतज्ञान रूप कारण से होती मानी गई है। अत: श्रुतज्ञान का माहात्म्य अचिन्त्य है। श्रुतज्ञान से रहित देहवृद्धि निरर्थक ही समझनी चाहिए। आचार्य भगवन् सोमदेव सूरी यशस्तिलक चंपू में कहते हैं-

श्रुताय येषां न शरीरवृद्धिः, श्रुतं चारित्राय च येषु नैव।
तेषां बलित्वं ननु पूर्वकर्म-व्यापारभारो वहनाय मन्ये॥

जिनका जीवन श्रुतज्ञान के लिए नहीं है और श्रुतज्ञान चारित्र के लिए नहीं है, उनका बलवान् होना पूर्व कर्म के व्यापार भार को ढोने के लिए ही है।

श्रुतज्ञान समस्त रोगों को दूर करने वाली औषधि है। इसका विनयपूर्वक अध्ययन करने से प्रमाद से विस्मृत हो जाने पर भी यह श्रुत

आगामी भवों में केवलज्ञान की प्राप्ति का कारण होता है। कहा भी है-

विणएण सुदमधीदं जदि वि पमादेण होदि विस्सरिदं।
तमु वट्टदि परभवे केवलणाणं च आवहदि॥-मूलाचार

आत्मकल्याण के लिए श्रुतज्ञान से बढ़कर दूसरा कोई भी ज्ञान नहीं है। प्रथम, द्वितीय शुक्लध्यान में भी श्रुतज्ञान आधारस्वरूप है।

अत्यल्पामतिरक्षजा मतिरयं बोधोऽवधिः सावधि,
साश्चर्यः क्वचिदेव योगिन स च स्वल्पो मनःपर्ययः।
दुष्पापं पुनरद्य केवलमिदं ज्योतिः कथागोचरं,
माहात्म्यं निखिलार्थगे तु सुलभे किं वर्णयामः श्रुते॥

इंद्रियों से होने वाला यह मतिज्ञान अत्यन्त अल्प है। अवधिज्ञान अवधि-सीमा से सहित है, आश्चर्य से युक्त मनः पर्ययज्ञान किसी मुनि विशेष के होता है फिर भी अत्यन्त अल्प है और यह केवलज्ञान रूप ज्योति इस समय अत्यन्त दुर्लभ होने से मात्र कथा का विषय है, परन्तु श्रुतज्ञान समस्त पदार्थों को विषय करता है तथा सुलभ भी है। अतः इसके माहात्म्य का वर्णन क्या करें?

भव्य शास्त्रादि का आश्रय कर अपने श्रुतज्ञान रूप सम्यक्ज्ञान को पुष्ट कर सकता है। कई बार अभ्यास से रहित वा अज्ञानता के कारण ग्रंथों की भाषा कुछ जटिल प्रतीत होती है किंतु गुरुओं की अमृतमयी वाणी ग्रंथों के सार को बहुत सरलता से भव्यों की चित्त की भूमि तक पहुँचा देती है और वह धर्ममयी अमृतकण अंबु चित्त-भूमि को उपजाऊ बनाता है जिससे धर्म के अंकुर फूट पड़ते हैं और पुनः एकदिन उस भव्य को मोक्ष फल की संप्राप्ति होती है। प्रस्तुत कृति 'गुरुत्तं-7' परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज के प्रवचनों का संकलन है। जिनके प्रवचन 'मीठे प्रवचन' रूप विख्यात हैं। जिनके मिष्ट शब्द कर्णांजलि के माध्यम से अंतस तक पहुँचकर हृदय परिवर्तन, जीवन परिवर्तन करने में अमोघ हैं। पूज्य गुरुदेव की निर्मल पीयूष वाणी चित्त की निर्मलता, कषायों के उपशम, भावों की विशुद्धि, संक्लेशता की हानि, संयम में प्रवृत्ति आदि में निमित्त है।

वर्तमान परिपेक्ष्य में जन-जन तक जिनवाणी को पहुँचाने के

लिए आधुनिक रूप से उसका प्रस्तुतीकरण आवश्यक है। आचार्य भगवन् श्री कुंदकुंद स्वामी के अनुसार जो जिस भाषा में समझता हो, उसे उस भाषा में ही समझाना चाहिए। पूज्य गुरुदेव ने जीवन में सम्यक् परिवर्तन लाने वाले महत्त्वपूर्ण तथ्यों को सामान्य जन मानस के लिए अत्यंत सरल, बोधपरक शब्दों का प्रयोग करते हुए कहा। इसके अंतर्गत **'सर्वोदयी तीर्थ'** जैसे गंभीरता को लिए विषय पर विवेचन है तो **'आत्म विश्वास, 'सकारात्मक सोच'**, **'जो होता है वही अच्छा'** जैसे प्रेरक प्रवचन भी हैं। तो वहीं आचार्य गुरुवर **'व्यवहारिक जीवन'** जैसे शीर्षक पर समस्त देश को संबोधित करते हैं क्योंकि सम्यक् व्यवहार के बिना निश्चय तक की यात्रा नहीं की जा सकती। और **'प्रभु भक्ति'** इस पर तो गुरुवर श्री ने भक्ति को आत्मा की बैटरी को चार्ज करने का पॉवर हाऊस बताकर बहुत ही अद्भुत विवेचन किया है। गुरुवर श्री की यह वाणी जन-जन तक पहुँच सके एतदर्थ इसका संपादन किया जा रहा है। आशा है गुरुत्तं का यह सातवाँ भाग भी पाठक उतने ही स्नेह से पढ़ेंगे और जीवन को उत्कृष्ट बनाने का पुरुषार्थ करेंगे।

यदि इस पुस्तक के संपादन में कोई त्रुटि रह गई हो तो विज्ञजन संशोधित कर पढ़ें। हंसवत् गुणग्राही दृष्टि से इसका अध्ययन करें। इस पुस्तक की पांडुलिपि आदि तैयार करने में संघस्थ त्यागीव्रती तथा मुद्रण प्रकाशन में सहयोगी सभी धर्मस्नेही बंधुओं को पूज्य गुरुदेव का धर्मवृद्धि शुभाशीष। गुरुवर श्री का संयम पथ सदैव आलोकित रहे, शताधिक वर्षों तक यह वसुंधरा गुरुवर श्री के तप, ज्ञान, साधना से आलोकित रहे। पूज्य गुरुदेव के श्री चरणों में सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति सहित नमोस्तु-नमोस्तु-नमोस्तु.....

''सर्वेषां मंगलं भवतु''

श्री शुभमिति मार्गशीर्ष कृष्ण 6
वीर निर्वाण संवत् 2544
श्री दि. जैन मंदिर
बैंक एन्क्लेव, लक्ष्मीनगर (दिल्ली)

ऊँ ह्रीं नमः
आर्यिका वर्धस्व नंदिनी
28 नवम्बर, 2018

सर्वोदयी तीर्थ

महानुभाव! जब कभी इस अखिल विश्व को ज्ञाता-दृष्टा बनकर देखते हैं, तब सम्पूर्ण विश्व में आत्मकल्याण के लिये जो सूत्र प्राप्त होते हैं उन पर विचार करने पर ऐसा लगता है, यह आत्मा स्वयं के ही कर्मों के कारण बंधन में बंधा हुआ जन्म मरण के दु:खों को प्राप्त करता है। यह आत्मा स्वयं ही कर्मों का बंध बांधने वाला है और यह आत्मा ही स्वयं अपने कर्मों को नष्ट करने वाला है, कर्म बंधनों से मुक्त होने वाला है, संवर व निर्जरा करने वाला है।

महानुभाव! आत्मा आकाश की तरह से निर्लेप है। जैसे आकाश से कितना भी पानी बरसे आकाश गीला नहीं होता, चाहे जंगल में कैसी भी आग लगी हो आकाश ऊष्ण नहीं होता, चाहे कितनी आँधी-तूफान चले पर वे कण आकाश को गंदा नहीं कर पाते। आकाश निर्लेप था, निर्लेप है और निर्लेप रहेगा उसे किसी भी प्रकार से मलिन किया जाना असंभव है। क्योंकि वह अपने स्वभाव में अवस्थित है। ऐसे ही हमारी आत्मा का स्वभाव सम्पूर्ण कर्मों के लेप से रहित रहना है। हमारी आत्मा कर्मों से रहित हो सकती है, यदि एक बार कर्मरहित हो जाये तो पुन: कर्मों को ग्रहण नहीं कर सकती। क्योंकि कर्मरहित आत्मा में कर्मों को ग्रहण करने की शक्ति कर्मों के साथ ही नष्ट हो जाती है। कर्म के उदय से ही कर्म ग्रहण करने की शक्ति आती है, कर्म के बिना किसी भी आत्मा में कर्मग्रहण की शक्ति नहीं आ सकती।

यह आत्मा स्वभाव से ही स्वतंत्र है। क्योंकि देखा जाता है कि मानवकृत ही सभी बंधन बनाये जाते हैं स्वभाव में कोई बंधन नहीं है। बंधन राग की तीव्रता होने पर बनाया जाता है या द्वेष की तीव्रता होने पर या मोह की प्रगाढ़ता होने पर। जिस जीव ने राग-द्वेष-मोह से स्वयं को मुक्त कर लिया है, व इससे परे पहुँच गया है, उसके जीवन में बंधन का कोई काम शेष नहीं रहा। जैसे कोई भी दीवार स्निग्धता से सहित है, तब उस पर धूल के कण चिपक सकते हैं, किन्तु दीवार में स्निग्धता नहीं है तब धूल के कण उस पर नहीं चिपक सकते चाहे कितने भी कण उड-उड कर आ जायें। ऐसे ही आत्मा में जब तक राग-द्वेष का संशलिष्ट संबंध है तब तक वह आत्मा कार्माण वर्गणाओं को स्वयं से बांधने में समर्थ होती है। वे कार्माण वर्गणायें राग-द्वेष की स्निग्धता व रुक्षता को प्राप्त करके कर्म अवस्था को प्राप्त हो जाती हैं।

महानुभाव! मानव ने एक स्थान पर जाने के लिये किसी को परमिट दिया, दूसरे को नहीं दिया, अमुक व्यक्ति यहाँ जा सकता है, अमुक नहीं। यह आम रास्ता है यह विशेष रास्ता है। यह सब मर्यादायें, कानून और नियम मानवकृत हैं। किंतु प्रकृति ने ऐसे कोई नियम नहीं बनाये। कोई व्यक्ति भारत से बाहर विदेश जाता है तो उसे वीजा-पासपोर्ट बनवाना पड़ता है किंतु विदेश से आने वाली हवा को कोई वीजा-पासपोर्ट बनवाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। विदेश से आने वाले बादलों को मंडराने के लिये किसी की परमीशन की आवश्यकता नहीं, वहाँ के पक्षी यहाँ हजारों लाखों की संख्या में आते हैं व कुछ समय पश्चात् स्वतः ही लौट जाते हैं उन सभी को न कभी वीजा चाहिये न पासपोर्ट। ऐसे ही हमारी आत्मा भी स्वभाव से प्रकृत्या स्वतंत्र है।

वह स्वभाव से स्वतंत्र तो है पर वर्तमान में नहीं। वर्तमान में वह आत्मा बंधनों से युक्त हो गयी है, क्योंकि कर्म के उदय से वह प्रभावित हो रही है। यदि आत्मा कर्मोदय से प्रभावित न हो तो उस आत्मा को कोई भी कर्मबंधन में नहीं बांध सकता। जैसे जो

वस्तु कुचालक है विद्युत से प्रभावित नहीं होती उसके लिये विद्युत कुछ भी नहीं करती, जो वस्तु सुचालक है, विद्युत प्रवाह उसमें चला जाता है। ऐसे ही आत्मा कुचालक हो जाये, उस आत्मा में यदि कर्म ग्रहण करने की शक्ति न रहे तो कोई भी कार्माणवर्गणा हमारी आत्मा को नहीं बांध सकती।

अंतिम तीर्थंकर वर्धमान महावीर स्वामी जिनके इंद्रों ने आकर गर्भ और जन्म कल्याणक मनाये। वे तीस वर्ष तक गृहस्थ जीवन में रहे किंतु संसार के बंधन अथवा परिणय बंधन को स्वीकार नहीं किया। एक दिन वे अशोक वृक्ष के नीचे बैठे हुये चिंतन कर रहे थे, चिंतवन करते-करते जब उन्हें जातिस्मरण हो आया तब वे संसार-शरीर भोगों से विरक्त होकर यथाजात् दिगम्बर दीक्षा को ग्रहण कर तपस्या हेतु वन को चले गये। उन्होंने 12 वर्ष की कठोर साधना की, उस साधना के उपरांत उन्होंने जिस तत्त्व को, जिस धर्म को, जिस केवल बोधि को प्राप्त किया उसमें उन्होंने प्राणी मात्र के कल्याण के लिये सूत्र दिये। उनके उपदेश दिव्यध्वनि के रूप में विश्व में विख्यात हैं।

जो स्वयं सार्वभौमिक, सार्वकालिक, सार्वजनिक है वही सबके हित की बात कह सकता है। जो किसी संकीर्णता के दायरे में बंधा होता है वह सबसे हित की बात कहने में असमर्थ होगा। जिससे उसका स्वार्थ सिद्ध होता है उसके हित की बात कहेगा, जिससे स्वार्थ सिद्ध नहीं होता उसके हित की बात नहीं कहेगा। भगवान महावीर स्वामी जब संसार के बंधनों से परे हुये ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय व अन्तराय कर्म का क्षय किया केवलज्ञानादि अनंत चतुष्टय को प्राप्त किया तब उनकी दिव्यध्वनि सर्वकल्याण रूप में प्रस्तुत हुयी।

आचार्य भगवन् समंतभद्र स्वामी जी ने युक्त्यानुशासन में भगवान महावीर स्वामी के उपदेश के बारे में लिखा है-कि वास्तव में उनका धर्म 'सर्वोदयी धर्म' है। क्योंकि उनके उपदेश में सबके कल्याण की बात है। सबका कल्याण, सबका हित कैसे हो?

''जिनके विमल उपदेश में, सबके उदय की बात है।
शम भाव समता भाव जिनका, विश्व में विख्यात है॥

भगवान् महावीर स्वामी का शम भाव, इन्द्रियों को शमन करने का भाव और समत्व भाव तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। उनका उपदेश प्राणीमात्र के लिए कल्याण कारक है। भगवान् महावीर स्वामी के तीन गुण माने जाते हैं वे सर्वज्ञ थे, सर्वदर्शी थे, दोषों से रहित वीतरागी थे और हितोपदेशी अर्थात् जिनका उपदेश प्राणीमात्र के लिये कल्याणदायी था। आचार्य भगवन् समंतभद्र स्वामी जी युक्त्यानुशासन में लिखते हैं-

सर्वान्तवत्तद् गुणमुख्यकल्पं
सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षम्।
सर्वाऽऽपदामन्तकरं निरन्तं
सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव॥

हे भगवान् महावीर स्वामी! आपका शासन ही एक ऐसा शासन है जिनके शासन में सबके उदय की बात है। आपका तीर्थ ही सबका कल्याण करने वाला है। तीर्थ उसे कहते हैं जिसका आश्रय लेकर के भव्य प्राणी तिर सकें। वर्तमान काल में कुछ लोग नदी के किनारे को भी तीर्थ कहते हैं। उस किनारे से व्यक्ति नाव में बैठकर दूसरे किनारे तक पहुँच जाता है। वह घाट भी लौकिक तीर्थ कहा जाता है। जैन परम्परा में जितने भी पर्वत हैं, चोटियाँ हैं, शिखर हैं जहाँ पर संतों ने, अरिहंतों ने तपस्या व साधना की वहाँ से वे संसार सागर से पार हुये इसलिये जैन परम्परा में पर्वतों को भी तीर्थ माना। जैन साधु शीतकाल में नदी किनारे भी तपस्या करते हैं इसलिये नदी के किनारे भी तीर्थ होना संभव है। वृक्ष के नीचे बैठकर भी तपस्या करते हैं उनके चरणों की रज पूज्य है तो वहाँ भी तीर्थ हो सकता है किंतु इसका समीचीन अर्थ न समझने वाले व्यक्ति केवल स्थान की पूजा करने लगे। कोई पहाड़ की पूजा करने लगा, तो कोई वृक्षों की तो कोई नदी की पूजा करने लगा। किंतु वृक्ष का मूल, नदी और पर्वत

क्यों पूज्य हुये? किसी संत 'भगवंत' किसी भदंत किसी साधु पुरुष ने वहाँ जाकर तपस्या की, उस स्थान से उन्हें मोक्ष की प्राप्ति हुयी इसलिये वे स्थान तीर्थ की संज्ञा को प्राप्त हो गये।

महानुभाव! आचार्य भगवन् कह रहे हैं-भगवान महावीर स्वामी के तीर्थ में ही सबके हित की बात है, सबका मंगल करने वाला है, आपका धर्म ही तारण-तरण है। जो आपके धर्म रूपी नौका का सहारा लेता है वह संसार सागर से पार हो जाता है। भगवान् महावीर स्वामी के सिद्धांत को सभी जानते हैं 'जीयो और जीने दो'। उन्होंने यह सिद्धान्त सबके लिये दिया। वह सिद्धान्त किसी स्थानविशेष, व्यक्तिविशेष, जातिविशेष के लिये नहीं है क्योंकि वह आत्मा को परमात्मा बनाने का सिद्धान्त है वह विभाव से स्वभाव में आने का सिद्धान्त है। उन्होंने कहा **''सर्वान्तवत्तद्गुण मुख्य कल्पं''** वस्तु की विवक्षा ऐसी है कि एक साथ वस्तु के सभी धर्मों के बारे में नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक वस्तु में अनंत धर्म होते हैं, प्रत्येक वस्तु में अनेक विशेषतायें होती हैं, उन सभी विशेषताओं को कोई भी व्यक्ति एक बार में नहीं कह सकता। वे सभी विशेषतायें क्रमिक कही जाती हैं।

विशेषताओं का होना यह अनेकान्त है। विशेषताओं को एक-एक करके कथन करने की पद्धति स्याद्वाद है। यह जैनदर्शन में ही विद्यमान है विश्व के अन्य किसी भी दर्शन में यह स्याद्वाद शैली उपलब्ध नहीं होती। सभी धर्मों को अपने अंदर समेट कर रखने वाला अनेकांत धर्म सर्वोदयी धर्म है उस अनेकांत धर्म में गौणता व मुख्यता की विशेषता है। आचार्य उमास्वामी जी महाराज ने लिखा है **''अर्पितानर्पित सिद्धे''** पदार्थों की सिद्धि अर्पित और अनर्पित भाव से की जाती है। कभी किसी बात को मुख्य किया जाता है, तो कभी किसी बात को गौण किया जाता है। हमेशा सभी बातों को मुख्य नहीं कर सकते और हमेशा सभी बातों को गौण नहीं कर सकते। इस प्रकार भगवान् महावीर स्वामी का धर्म अपेक्षा को लिये हुये है।

जिस धर्म में अपेक्षा का भाव नहीं लिया है तो कह रहे हैं **'सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षा'** अपेक्षा से रहित जितने भी सम्पूर्ण गुण-धर्म हैं वे सब मिथ्यापने को प्राप्त हो जाते हैं। जैसे कोई व्यक्ति कहे-रामचंद्र जी कौन हैं?

किसी ने कहा रामचंद्र जी तो भगवान हैं एक कहता है वे अयोध्या के राजा थे, एक कहता है रामचंद्र जी दशरथ के पुत्र थे, कोई कहता है वे कौशल्या के पुत्र थे, कोई कहता है वे सीता के पति थे, कोई कहता है रामचंद्र जी अनंगलवण व मदनांकुश के पिता थे, सबने अलग-अलग कहा ये सब बातें रामचंद्र जी में हैं किन्तु एक बार में एक बात ही कही जा सकती है। सभी बातों को कोई एक बार में कह नहीं सकता।

वचन की प्रवृत्ति क्रमिक होती है, वचन की प्रवृत्ति युगपत् नहीं होती। केवली भगवान् जानने और देखने में तो सकल पदार्थों को एक साथ जान भी सकते हैं, देख भी सकते हैं और उनका उपदेश तालु, होंठ, जिह्वा को हिलाये बिना सर्वांग से निःसृत होता है। इसलिये वे सम्पूर्ण द्वादशांग रूप सार को एक बार में प्रकट करने में भी समर्थ होते हैं। किन्तु छद्मस्थ जिह्वा के द्वारा बोलकर धर्म का उपदेश देगा वह क्रमिक ही दे सकेगा अक्रमिक उपदेश या युगपत् नहीं दे सकता।

महानुभाव! आचार्य महाराज लिखते हैं **'सर्वाऽऽपदामन्तकरं निरन्तं'** सम्पूर्ण आपत्तियों को समाप्त करने वाला यह धर्म सर्वोदय धर्म है। यह सर्वोदय धर्म अखण्ड है। यह सबके लिये कैसे है? जैसे आकाश सबके लिये है। मानव ने पृथ्वी को तो बांट लिया, यह भारत देश, यह पाकिस्तान-चायना-नेपाल आदि। अमुक देशों को सीमाओं में विभक्त कर दिया किन्तु आकाश को बांट न सका न बांट सकेगा। आकाश जैसे अखण्ड है वैसे धर्म भी अखण्ड है। आकाश सबके लिये है, एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के लिये है वह आकाश कभी भी किसी

को स्थान देने से मना नहीं करता, वह सबको अवगाहन देता है। इस आकाश में जीवादि छः द्रव्य अनादि काल से अवगाहन प्राप्त कर रहे हैं। ऐसे ही यह सर्वोदयी धर्म है सबको अवगाहन देने वाला है। जैसे अग्नि कभी भेदभाव नहीं करती वह अपनी उष्णता किसी एक व्यक्ति, वस्तु विशेष को नहीं देती, वृक्ष कभी भेदभाव नहीं करता, जल कभी नहीं कहता मैं सिर्फ एक व्यक्ति की प्यास बुझाऊँगा दूसरे की नहीं, हवा नहीं कहती मैं एक के लिये प्राण वायु का काम करूँगी दूसरे के लिये नहीं, ऐसे ही भगवान् महावीर स्वामी द्वारा प्रतिपादित यह सर्वोदयी धर्म उसी तरह से है जैसे मादा का दूध सबको पौष्टिक होता है। औषधि प्रत्येक को आरोग्य देने वाली होती है। जैसे नीर व अन्न सबको सुख शांति के निमित्त होते हैं, वे क्षुधा तृषा की वेदना को हरने वाले होते हैं ऐसे ही भगवान महावीर स्वामी द्वारा प्रतिपादित यह सर्वोदयी तीर्थ प्राणीमात्र का कल्याण करने में समर्थ है।

महानुभाव! इस सर्वोदयी तीर्थ को हम अच्छी तरह से जानें, समझें और अपनी आत्मा से विकारों को दूर करके भगवान वीर प्रभु का वह धर्म अपने अंदर अवतरित करें। जैसे कूप खोदने पर उसमें जल स्रोत स्वतः ही प्रगट होता है वैसे ही आत्मा का धर्म, स्वभाव स्वतः प्रकट होता है उसे बाहर से कहीं प्रकट करने की आवश्यकता नहीं है। भगवान महावीर का शासन यही कहता है-प्रत्येक आत्मा परमात्मा बन सकती है और स्वयं के ही पुरुषार्थ से। कोई भी किसी को परमात्मा नहीं बना सकता, और कोई भी किसी आत्मा को परमात्मा बनने से रोक नहीं सकता है। प्रत्येक आत्मा में परमात्मा बनने के गुण व शक्ति विद्यमान हैं। हम भी उन सिद्धान्तों को प्रकट करके अपनी आत्मा को परमात्मा बनाने का सम्यक् पुरुषार्थ करें। इसी में आत्मा का हित संभव है। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....''

''श्री शांतिनाथ भगवान की जय''

महानुभाव! जीवन में जिस किसी प्राणाी को भी देखते हैं, प्राय:कर के वही प्राणी दु:खी दिखायी देता है। ऐसा प्राणी खोजना बहुत मुश्किल है जो सुखी दिखाई दे। दु:ख हमारे जीवन में इसलिये है क्योंकि हमारे पास दु:ख के कारण हैं। जिस किसान के खेत पर जैसा वृक्ष लगा होता है, उस वृक्ष से वैसा ही फल मिलता है। कारण के अनुसार ही कार्य होता है। आम का पेड़ है तो फल आम के लगेंगे, जामुन का है तो जामुन के। जैसा वृक्ष है वैसा फल आयेगा।

हमारी चेतना में एक दु:ख का पेड़ है उस दु:ख के पेड़ पर दु:ख के फल लगते हैं, उस दु:ख के वृक्ष का नाम है 'परिग्रह'। वह परिग्रह संसार के प्रत्येक प्राणी को अपने बंधन में बाँध कर डाल देता है। ऐसी अन्य कोई रस्सी-खोजना संसार में असंभव है जिससे सभी प्राणियों को बाँधा जा सके। किंतु परिग्रह एक ऐसी रस्सी है, ऐसा सुदृढ़ और विशाल रज्जु है जिसके माध्यम से सभी प्राणियों को बाँधना शक्य है। परिग्रह का अर्थ है 'आ समन्तात्' चारों तरफ से दशों दिशाओं से या जितनी भी दिशायें होती हैं उन सभी की ओर से जो ग्रहण करे या ग्रसे वह परिग्रह कहलाता है।

परिग्रह से व्यक्ति का स्वाभाविक गुण-धर्म नष्ट हो जाता है। जैसे ग्रहण के लगने से सूर्य चन्द्रमा की सहज कान्ति फीकी पड़ जाती है वह मलिन दिखाई देने लगते हैं। जो स्वयं मलिन वस्तुओं को, कांतिविहीन वस्तुओं को कांतिमान द्युतिपूर्ण और प्रकाशमय बनाते हैं,

जिस सूर्य चंद्रमा के माध्यम से सबमें तेज दिखाई देने लगता है, ग्रहण लगने से वे सूर्य चन्द्रमा भी कांतिविहीन होने लगते हैं। महानुभाव! जैसे अनाज में घुन लग जाता है, वृक्षों में दीमक लग जाती है उसी प्रकार आत्मा में जो घुन लगता है, जो आत्मा को ग्रसता है वह परिग्रह होता है।

परिग्रह संग्रह के बाद होता है। पहले व्यक्ति संग्रह करता है, पुनः उसके जीवन में विग्रह और निग्रह की बातें आने लगती हैं। परिग्रही व्यक्ति दुराग्रही और हठाग्रही हो जाता है। परिग्रह आया तो दुराग्रह आ गया, उसे छोड़ेंगे नहीं तो हठाग्रह भी आ गया। संग्रह, विग्रह और निग्रह का कारण है। संग्रह के रहते हुये आत्मा का अनुग्रह नहीं किया जा सकता। इसीलिये इस संग्रह का जब तक त्याग नहीं किया जाता है तब तक अनुग्रह नहीं होता।

यह परिग्रह जीवन को उस प्रकार से पतित करता है जिस प्रकार कोई हल्की वस्तु यदि भार को अपने ऊपर रख ले तो वह सहजता में नीचे आ जाती है। गुब्बारा या पतंग जब तक निर्भार होते हैं तब तक आकाश में उड़ते रहते हैं। उनके मुख पर थोड़ा सा भी परिग्रह, बोझ रख दिया जाये तो आकाश में उड़ न सकेंगे। हल्की वस्तु पानी में तैरती है, भारी वस्तु पानी में डूब जाती है और नीचे चली जाती है। ऐसे ही यह परिग्रह है जिसके साथ लग गया, जिसका गला पकड़ लिया उसे दबा देता है। न केवल दबाता है वरन् दबाते-दबाते आत्मा को नीचे नरक में ले जाता है।

जिसके पास परिग्रह है, वही व्यक्ति नवग्रह की पीड़ा से परेशान होता है। ज्योतिष शास्त्रों में नवग्रहों का कथन आता है। कोई ग्रह शुभफल देने वाले होते हैं तो कोई ग्रह अशुभफल देने वाले भी होते हैं। शुभफल देने वाले ग्रह शुभफल, अशुभफल देने वाले अशुभ फल देते हैं किन्तु इन ग्रहों का फल उसे ज्यादा प्राप्त होता है जो परिग्रह से सहित है। जिसने परिग्रह के आवरण को उतारकर फेंक दिया उस

व्यक्ति को फिर ये नवग्रह पीड़ा नहीं दे सकते। जैसे किसी व्यक्ति ने चुम्बक से बना एक ओवरकोट पहन लिया, फिर उस व्यक्ति पर कोई ऑलपिन से वार करे तो सभी ऑलपिन उसमें चिपकती चली जायेंगी। और यदि कोई व्यक्ति ऐसा कोट पहने जिसमें गुरुत्वाकर्षण शक्ति प्रकट न हो, उसके Against हो तो सब नीचे गिरती जायेंगी। ऐसे ही जिसके पास परिग्रह होता है वह कर्मों को भी ग्रहण करने में समर्थ है, प्रतिकूलताओं को ग्रहण करने में भी समर्थ है। वह व्यक्ति न किसी को अपना मित्र बना सकता है, न किसी का मित्र बन पाता है क्योंकि उसे हमेशा एक परिग्रह की चिंता सताती रहती है।

परिग्रह एक शरीर का नाम है। जिस शरीर में दु:ख रूपी आत्मा निवास करती है। वह दु:खदायी आत्मा परिग्रह रूपी शरीर के बिना नहीं रह पाती। परिग्रह का शरीर बनता है तब दु:ख रूपी आत्मा उसमें आ जाती है। जिसके पास यह परिग्रह रूपी शरीर नहीं उसके पास दु:ख रूपी आत्मा न आयेगी। परिग्रह में पाँचों पापों को बुलाने की शक्ति है। ये परिग्रह स्वयं तो पाप है ही, इसका संचय जब भी किया जाता है अब्रह्म भाव को लेकर किया जाता है, विषयों के सेवन के भाव को लेकर किया जाता है। इसलिये विषयसेवन का भाव ही अपने आप में अब्रह्म है। उन भावों को छिपाया जाता है, चोरी की जाती है तो परिग्रह का संचय अपने आप में चौर्यपाप भी है। द्रव्य में भी चौर्य कर्म होता है क्योंकि कई बार परिग्रह सहजता में नहीं आता, अन्याय अनीति के मार्ग से ग्रहण किया जाता है, इसलिये वह चोरी है। परिग्रहवान् व्यक्ति प्राय:कर के सत्य नहीं बोलता, वह सोचता है यदि मैं सत्य बोल दूँगा तो मुझे दान देना पड़ेगा, किसी का सहयोग करना पड़ेगा, उपकार करना पड़ेगा इसलिये वह झूठ बोलता है मेरे पास है ही नहीं। अत: वह असत्यवादी भी हो जाता है। परिग्रह संचय करने वाला व्यक्ति नि:संदेह यह मानना चाहिये कि अपने आप में हिंसक है। दूसरों के हक को दबा करके रखे, इतना ही नहीं अपने भी शुद्ध

भावों का हनन कर रहा है इसलिये हिंसक है। इस प्रकार परिग्रहवान् व्यक्ति पाँचों पापों में संलिप्त है।

आचार्य भगवन् शिवकोटि महाराज ने भगवती आराधना में कहा है-

संग णिमित्तं मारेइ अलियवयणं च भणइ तेणिक्कं।
भजदि अपरिमिद मिच्छं सेवदि मेहणमवि य जीवो॥

परिग्रह के लिए मनुष्य जीव घात करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, अपरिमित तृष्णा रखता है, मैथुन सेवन करता है ऐसा करने पर अहिंसादि व्रत नहीं हो सकते हैं। परिग्रह त्याग करने पर ही अहिंसादि व्रत स्थिर हो सकते हैं।

परिग्रहवान् व्यक्ति क्रोध-मान-माया-लोभ इनसे भी अछूता नहीं रहता। परिग्रह की संज्ञा बिना लोभ के जाग्रत नहीं होती। लोभकषाय जब जाग्रत होती है तब परिग्रह संज्ञा आती है और ज्यों-ज्यों परिग्रह आता है, त्यों-त्यों लोभ बढ़ता जाता है। **'लाहो लोहो वड्ढ़दि'** ज्यों-ज्यों लाभ बढ़ता है त्यों-त्यों लोभ बढ़ता है और ज्यों-ज्यों लोभ बढ़ता है त्यों-त्यों लाभ की इच्छा होती है।

अकबर और बीरबल के जमाने की बात है। अकबर और बीरबल दोनों सांयकाल घूमने के लिये जाया करते थे। कभी-कभी नगर के बाहर तो कभी-कभी प्रजा का अवलोकन करने नगर के बाजारों में भी घूम आते थे। एक शाम दोनों घूमने के लिये नगर के बाजार से गुजर रहे थे। अचानक अकबर की नजर एक वणिक् की दुकान पर गई वह वणिक् बहुत ही उदास और चिंतित नजर आ रहा था। अकबर ने बीरबल से पूछा-बीरबल! ये वणिक् इतना उदास क्यों है? मैं उदासी का कारण जानना चाहता हूँ। बीरबल ने उस वणिक् को बुलाया और उसकी उदासी का कारण पूछा तब बड़े विनम्र स्वर में वणिक् बोला-जहाँपनाह! मैं एक साधारण व्यापारी हूँ जो बदलते मौसम के साथ व्यापार बदलता हूँ। इस वर्ष ठंड के मौसम में मैं अपनी सारी मूल पूंजी लगाकर 500

कंबल खरीदकर लाया था। परन्तु मेरे दुर्भाग्य से इस वर्ष कम ठंड पड़ी और एक भी कंबल नहीं बिका। यह सुनकर अकबर का हृदय दया भाव से भर गया।

दूसरे दिन राजसभा में जब सारे सभासद उपस्थित हो गये तब अकबर ने एक सूचना दी कि कल सुबह जो भी मेरी राजसभा में आयेगा वो अपने साथ एक नया कंबल अवश्य लेकर आयेगा। और जो नहीं लायेगा उसे 500 रूपये का दंड देना होगा। ऐसी अजीब सूचना सुनकर सभी हैरान हुए एक-दूसरे को देखने लगे। परन्तु किसी में भी कुछ पूछने की हिम्मत नहीं हुयी। सभी लोग एक-एक करके कंबल की खोज में उस वणिक् की दुकान पर पहुँच गये। वणिक् बड़ा हैरान कि पूरे 3 मास में मेरा एक कंबल भी बिका नहीं और आज तो ग्राहक पे ग्राहक दुकान में आते जा रहे हैं। वह बड़ा प्रसन्न हुआ बड़े उत्साह से उसने ढाई रूपये का कम्बल पाँच रूपये में बेचना शुरू कर दिया कुछ समय बाद उसने देखा कि दो ग्राहक लेकर जा रहे हैं और चार ग्राहक लेने आ रहे हैं। उसने तुरंत ही 5 रूपये की कीमत को पच्चीस रूपये में बदल दिया। सारे कंबल उसने 3-4 घंटे में बेच दिये अपनी जरूरत के लिये उसने सिर्फ एक ही कम्बल बचाया। आखिर बीरबल भी उसी व्यापारी से कंबल लेने पहुँच गया। जब देखा कि एक भी कंबल नहीं है तो बीरबल ने कहा कि जितनी चाहे कीमत ले लो पर मुझे एक कंबल दे दो। वणिक् ने कुछ देर सोचकर अपने लिये रखा हुआ कंबल निकाला और कहा कि पूरे ढाई सौ रूपये लूँगा। बीरबल ने सोचा कल दरबार में पाँच सौ रूपये देने से अच्छा है कि ढाई सौ रूपये में कंबल खरीद लूँ और उसने कंबल खरीद लिया। वणिक् बहुत प्रसन्न हुआ।

बीरबल के जाने के बाद व्यापारी बड़ी गहरी सोच में डूब गया कि ढाई रूपये का कम्बल ढाई सौ रूपये में बेचकर मैंने लाभ कमाया। कितना अच्छा होता यदि मैं सारे कंबल ढाई सौ में बेचता। आज शाम तक मेरे पास सवा लाख रूपये इकट्ठे हो गये होते। परन्तु

मैं चूक गया और इसी ऊहापोह में वह फिर से उदास हो गया। जब शाम को सदा की भाँति अकबर और बीरबल घूमने निकले। अकबर ने बीरबल से कहा बीरबल आज तो वह वणिक् बहुत खुश होगा। मैं उसे देखने को आतुर हूँ जैसे ही उसने वणिक् की उदास मुखमुद्रा देखी तो बडा चकित हुआ और वणिक् को बुलाकर पूछा कि आज तो तुम्हारा सारा माल बिक गया फिर तुम उदास क्यों हो। वह रोते हुये बोला कि आपकी कृपा से मेरे सारे कंबल बिक गये। मेरा अंतिम कंबल 250 रूपये में बिका अब मुझे पश्चाताप हो रहा है कि कितना अच्छा होता कि शुरू से सारे कंबल 250 रूपये में बेचता। यह बात सोचकर मैं दुखी हूँ। अकबर यह सुनकर विस्मित हुए और बीरबल को देखने लगे। तब बीरबल ने कहा–जहाँपनाह! यह मानव मन की कहानी है। जितना लाभ बढ़ता है उतना लोभ भी बढ़ता है। यह वणिक् कल तक माल नहीं बिकने से परेशान था पर आज लोभ से परेशान है।

महानुभाव! लाभ मिले या न मिले किंतु लोभ तो बढ़ता ही जाता है। वस्तु यदि न्याय पूर्वक मिल जाती है तब पुनः उसके प्रति आसक्ति और बढ़ जाती है, यदि अन्याय से प्राप्त की जाती है तो उसे मायाचारी का जाल बुनना पड़ता है तो वह अहंकार से भर जाता है सामने वाले का तिरस्कार व अपमान भी करता है। तो यह परिग्रह मान कषाय का भी कारण है। यदि उसके परिग्रह में कोई बाधा डालता है, कोई छीनता है या ग्रहण करता है तब यह परिग्रहशील व्यक्ति क्रोध से आग बबूला हो जाता है और क्रोध आते ही उसका विवेक नष्ट हो जाता है।

यह परिग्रह का भूत जिसके ऊपर एक बार सवार हो गया उसकी दम लेकर ही छोड़ता है। परिग्रहवान् को मुक्ति नहीं, उसका चित्त भी शुद्ध नहीं इसलिये कहा **''परिग्गहो हु महामला''** परिग्रह ही सबसे बड़ा मल है। वह ही कीचड़ और गंदगी है। जैसे बाह्य कीचड़ को धोने के लिये जल की आवश्यकता पड़ती है ऐसे ही परिग्रह रूपी मल को धोने के लिये समता और संतोष रूपी जल की आवश्यकता

पड़ती है। बिना समता व संतोष रूपी जल के कोई भी व्यक्ति अपने परिग्रह के दाग को धो नहीं सकता है। और पुनः उस दाग को सम्पूर्ण रूप से दूर करने के लिये, ताकि पुनः वह मल हमारी आत्मा में न लगे, इसलिये परिग्रह का सम्पूर्ण विसर्जन कर देना चाहिये, त्याग कर देना चाहिये। यह परिग्रह भूत की तरह से है।

एक बुढ़िया प्रतिदिन अपने खेत पर काम करने जाती थी, और वह अपने घर से खाने के लिये थोड़ा सा भोजन व पानी लेकर जाती थी। एक दिन वह खेत में काम कर रही थी, संयोगवशात् वहाँ बंदरों की टोली आ गयी। बंदरों ने देखा यहाँ दो मटकी रखी हैं एक मटकी (सुराही) में पानी था, बंदर ने पानी पीया और उसे लुढ़का दिया। दूसरी सुराही में देखा उसमें भुने चने और छोटी-छोटी गुड़ की डेली रखी थी। बंदर ने हाथ डालकर थोड़ा सा चना गुड़ निकालकर खाया तो बहुत अच्छा लगा, उसने सोचा एक बार में ही सम्पूर्ण गुड़ चने खाकर अपना पेट भर लूँ। उस बंदर ने अपना हाथ डाला और मुट्ठी भरी। क्योंकि मटकी का मुख छोटा था, वह बंधी मुट्ठी उसमें से निकल नहीं रही थी, बंदर ने बहुत कोशिश की परंतु हाथ नहीं निकला। बंदर को लगा शायद इस मटकी में कोई भूत है, उस भूत ने मेरा हाथ पकड़ लिया। वह बंदर चीखने लगा रोने लगा, उसके चिल्लाने की आवाज सुनकर अन्य बंदर भी आ गये, सभी ने मिलकर उसका हाथ निकालने की खूब कोशिश की किंतु हाथ नहीं खिंच पाया। उस बंदर ने अपनी भाषा में कहा, लगता है इसमें कोई भूत बैठा हुआ है जिसने मेरे हाथ को पकड़ लिया है, वह मेरे हाथ को छोड़ता ही नहीं।

तभी बुढ़िया ने देखा बंदर परेशान हो रहा है, इसके लिये क्या उपाय किया जाये, उसने कुछ अन्य खाद्य सामग्री उस बंदर के सामने डाली, बंदर ने दूसरे हाथ से उठा ली, बुढ़िया ने और सामग्री डाली तो बंदर ने तुरंत अपने दूसरे हाथ की मुट्ठी खोली। मुट्ठी छोड़ते ही उसका हाथ स्वतंत्र हो गया। महानुभाव! यह परिग्रह बंधन देने वाला

है और परिग्रह का जब त्याग किया जाता है तो जीव स्वतंत्र हो जाता है। अदत्त याने बिना दिए ग्रहण करना चोरी कहलाता है।

जो दत्त परिग्रह भी ग्रहण नहीं करता है वह निष्परिग्रही कहलाता है, अपरिग्रही कहलाता है। अपरिग्रह ही समस्त परिग्रह का विनाश करने वाली अग्नि है। अपरिग्रह के अस्त्र-शस्त्र द्वारा ही परिग्रह रूपी राजा पर विजय प्राप्त की जा सकती है। यह परिग्रह केवल इसी भव में दु:ख नहीं देता, भव-भव में दु:ख देता है। आचार्य उमास्वामी जी महाराज ने तत्त्वार्थ सूत्र में लिखा है **'बह्वारम्भ परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः'**

जीवन में बहुत आरंभ और परिग्रह नरक आयु के बंध और आश्रव का कारण है। जितना ज्यादा परिग्रह उतना ज्यादा दु:ख।

फांस तनक सी तन मे साले, चाह लंगोटी की दु:ख भाले॥

यदि थोड़ा भी परिग्रह है, मन में थोड़ी भी इच्छा है, तो जब तक वह रहेगी तब तक दु:ख ही देती रहेगी। और यदि वह चिंता, वह परिग्रह दूर होता है तो व्यक्ति निश्चिंत हो जाता है। जितना जिसके पास परिग्रह होता है, उतनी उसके पास चिंता भी रहती है उसकी सुरक्षा की। पहले तो परिग्रह इकट्ठा करने में कष्ट होता है, पुन: रक्षण में कष्ट होता है, व्यय करने में कष्ट होता है और जब कोई छीन कर ले जाये तब भी कष्ट होता है। यह परिग्रह अच्छा नहीं है।

कई बार तो ऐसा होता है वस्तु होने पर भी आसक्ति रहती है और कई बार ऐसा भी होता है, वस्तु न होने पर भी आसक्ति रहती है उसकी प्राप्ति की भावना से। निष्परिग्रही/अपरिग्रही का आशय यह है कि जिसके पास बाह्य में कुछ परिग्रह नहीं है और अंतरंग में भी किसी परिग्रह की कामना-वासना अभिलाषा न हो। इसलिये जैन आम्नाय में साधुओं को निर्ग्रंथ कहा जाता है। 'णिग्गंठ' इसका आशय होता है, उनके पास कोई ग्रंथ नहीं अर्थात् गांठ नहीं। जिसके पास कोई गांठ होती है तो समझो उसके पास परिग्रह है।

ग्रंथि दो प्रकार की होती है, एक बाह्य ग्रंथि दूसरी अंतरंग ग्रंथि। बाह्य ग्रंथि से आशय शरीर पर वस्त्र आदि पहनता है तो गाँठ लगाता है, चैन-बटन आदि लगाता है तो यह सब उसने छोड़ दिये। अंतरंग की ग्रंथि से आशय-क्रोध मान-माया-लोभ की ग्रंथि हो सकती है, हिंसा झूठ चोरी आदि रूप ग्रंथि हो सकती है, राग-द्वेष रूप ग्रंथि हो सकती है यह ग्रंथि (गाँठ) ही नि:संदेह दु:ख का कारण है। गाँठ शरीर में कहीं भी पड़ जाये, कहीं फोड़ा फुन्सी हो जाये तो वह गाँठ तब तक कष्ट देती है जब तक कि वह निकल न जाये। यह बात भी ध्यान रखना कि परिग्रह बिना वैराग्य के नहीं छोड़ना, बिना वैराग्य के परिग्रह छोड़ोगे तब नि:संदेह उसमें कष्ट ज्यादा होगा। इसलिये परिग्रह को छोड़ना है तो पकाकर के, यदि फोड़े में से गाँठ निकालना है वह भी पकाकर के, कच्चे फोड़े में से गाँठ निकालोगे तो कष्ट होगा, घाव भरने में देरी लगेगी इसलिये परिग्रह को भी पकाना है। पकाने से आशय है वैराग्य।

यदि जीवन में वैराग्य हो गया तो परिग्रह को छोड़ने में अन्तर्मुहूर्त का समय भी नहीं लगता। क्षणार्द्ध में सम्पूर्ण परिग्रह त्याग किया जा सकता है। चक्रवर्ती का वैभव भी एक क्षण में छोड़ा जा सकता है यदि अंतरंग में वैराग्य निष्पन्न हो गया हो तो। हमारे अंतरंग में जब वैराग्य परिपक्व हो जाता है तब अधिक देर नहीं लगती उस परिग्रह को छोड़ने में।

महानुभाव! यह परिग्रह का पिशाच छोड़ना है। पक्का साधु सच्चा साधु वही कहलाता है जो निर्ग्रंथ हो। जिसके अतरंग में राग-द्वेष मोह बैरादि की कोई गाँठ न हो और जिसके बहिरंग में भी किसी प्रकार की गाँठ की संभावना नहीं। न तो बालों में गाँठ हो, न कपड़े की गाँठ हो, न हाथ को बाँधा, न मुट्ठी को बाँधा है। इसमें कुछ छिपने की संभावना हो सकती है इसलिये यथाजात दिगम्बर साधु दोनों हाथ

खोलकर खड़े हो जाते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि ये परिग्रह सब तरफ से आत्मा को ग्रहण करता है जैसे लोहे का गोला अग्नि में संतप्त होकर अग्नि का सा ही गोला बन गया इसे जल के समीप रखो तो वह सब तरफ से जल को खींचता है, जल को जलाता है, ऐसे ही यह परिग्रह आत्मा के प्रदेशों को सब तरफ से कष्ट देता है।

परिग्रही का परिग्रह पास हो या दूर वह परिग्रह दु:ख ही देता है क्योंकि उपयोग सदैव उसी में लगा रहता है। इसलिये परिग्रह को आचार्यों ने दु:ख कहा है, उसे कर्मबंधन का कारण कहा है। परिग्रह को संसार का बीज कहा है। परिग्रह को ही मोक्ष मार्ग की अर्गला कहा है। उसे अग्नि कहा है जिसमें यह आत्मा झुलसती है इसलिये आप सभी पुण्यात्मा सुधी महानुभाव! परिग्रह का त्याग करें अपरिग्रही बनें। इस आत्मा का स्वभाव भी अपरिग्रही है। अपरिग्रही आत्मा ही स्व और पर का अनुग्रह करने में समर्थ होता है। आप सभी का शुभ हो, मंगल हो इन्हीं सद्भावनाओं के साथ .....''

॥श्री शांतिनाथ भगवान की जय॥

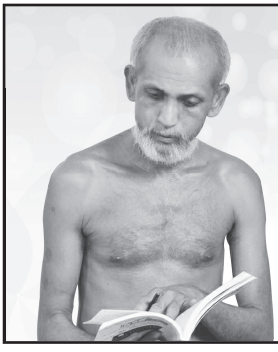

आत्म विश्वास

महानुभाव! जीवन में प्रत्येक प्राणी चाहता है मुझे कुछ विशेष उपलब्धि हो। किन्तु विशेष उपलब्धि बिना विशेष पुरुषार्थ के नहीं हो सकती। विशेष पुरुषार्थ विशेष व्यक्ति ही कर पाते हैं सामान्य व्यक्तियों द्वारा विशेष कार्य सम्पन्न नहीं हो पाता और विशेष व्यक्तियों को सामान्य कार्य करने में उतनी रुचि नहीं होती। हाँ यह बात अवश्य है कि विशेष व्यक्ति सामान्य कार्य को भी विशेष रीति से करते हैं और सामान्य व्यक्ति विशेष कार्यों को भी कम उत्साह के साथ करते हैं जिससे विशेष कार्य विशेष उपलब्धि नहीं दे पाता।

अच्छे आदमी केवल वही नहीं कहलाते जो जीवन में बड़े-बड़े कार्य करते हैं, अपितु अच्छे व्यक्ति तो वे कहलाते हैं जो प्रत्येक कार्य को अच्छी रीति से करते हैं। अच्छा कार्य करने के लिये केवल अच्छी साधन सामग्री की आवश्यकता नहीं है, या केवल अच्छा उद्देश्य बनाने की आवश्यकता नहीं अथवा मात्र अच्छे सहयोगियों की आवश्यकता नहीं है वरन् अच्छा कार्य करने के लिये सबसे पहले जिस चीज की आवश्यकता है, वह है अपने चित्त का सबसे अच्छा मनोभाव।

जो मनोभाव आपके चित्त में सबसे अच्छा है, उस मनोभाव को पूर्ण करने के लिये अपनी शक्ति को प्रकट करो। श्रेष्ठ व्यक्ति वह कहलाता है जो स्वावलम्बन लेता है। मध्यम व्यक्ति वह कहलाता है जो स्वावलम्बन के साथ-साथ परावलम्बन भी लेता है। जघन्य व्यक्ति वह कहलाता है जो परावलम्बन ही लेता है। वह सदा परावलम्बी ही रहता

है। महानुभाव! पर आलम्बन लेने से विशिष्ट वस्तु, मंजिल, उद्देश्य पूर्ण नहीं होते। वैशाखी के सहारे से चलने वाला व्यक्ति दौड़ में अव्वल नहीं आता, दौड़ में प्रथम स्थान को वही प्राप्त करता है जो अपने पैरों की सामर्थ्य से दौड़ता है। दूसरे का हाथ पकड़कर दौड़ने वाला व्यक्ति नंबर वन कभी नहीं आता, और जो व्यक्ति दूसरों को गिराकर आगे बढ़ना चाहता है, वह भी प्रथम स्थान पर नहीं आ सकता। प्रथम स्थान पर आने वाले व्यक्ति की विशेषता होती है कि उसे अपने पैरों पर भरोसा होता है।

एक व्यक्ति बेईमानी के माध्यम से, किसी निर्णायक को अपना बना करके यह सिद्ध करा दे कि मैं दौड़ में प्रथम आ गया, तो वह दौड़ निरस्त ही कर देना चाहिये और ऐसा प्रथम स्थान आना जघन्यतम से भी बदतर है। क्योंकि जघन्य स्थान को प्राप्त करने वाला व्यक्ति कदाचित् अव्वल आने का पुरुषार्थ कर सकता है किंतु जो बेईमानी से प्रथम स्थान पर आ गया वह जीवन में कभी भी ईमानदारी से प्रथम स्थान पर आने का साहस नहीं करेगा, और वह यह भी स्वीकार नहीं करेगा कि मैंने प्रथम स्थान प्राप्त नहीं किया, वह जघन्यतम स्थान पर होकर भी अपने चित्त में प्रथम स्थान का अहंकार पाल के रखेगा।

अहंकार से मंजिलों की प्राप्ति नहीं होती। मंजिलों की प्राप्ति के लिये तो अहंकार का विसर्जन परम आवश्यक है। क्योंकि अहंकार तो आगे बढ़ने में दीवार का कार्य करता है और स्वयं का आत्म विश्वास, शक्ति और ऊर्जा का कार्य करता है। जैसे पटरी पर दौड़ने वाली ट्रेन के लिये रेलवे लाइन गति में आवश्यक तत्त्व है। अथवा किसी विद्युत उपकरण के लिये विद्युत, प्राण ऊर्जा है। इसी तरह एक मनस्वी व्यक्ति, स्वावलम्बी व्यक्ति जब किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये आगे बढ़ता है, तब निःसंदेह वह अपनी आत्मा पर विश्वास करता है।

आत्मविश्वास की जाग्रति तब होती है जब व्यक्ति अनेक बार प्रयास करने पर भी यथेच्छ लाभ को प्राप्त न कर सके फिर

भी उसके मन में वही भावना, वही जुनून हमेशा तैयार रहे तो समझ लेना चाहिये, अब उसका आत्मविश्वास जग गया। आत्मविश्वासी व्यक्ति अपनी मंजिल को प्राप्त करके ही रहता है। विश्व की कोई भी शक्ति उसके लिये बाधक नहीं बन सकती। क्योंकि जिसके चित्त में आत्मविश्वास जग गया वह छोटा सा व्यक्ति बड़े कार्य को भी कर सकता है, जिसका आत्म विश्वास मर गया वह व्यक्ति छोटे से कार्य को भी जीवन में कर नहीं सकता।

''यूँ ही नहीं मिल जाती किसी राही को मंजिल
मन में एक जुनून सा जगाना पड़ता है,
मैंने पूछा-चिड़िया से, कैसे बना आशियाना तेरा,
वह बोली-भरनी पड़ती हैं उड़ानें बार-बार
तिनका-तिनका उठाना पड़ता है॥

जब वह चिड़िया मन में संकल्प ले लेती है, अपने ऊपर विश्वास करती है, वह विश्वास के साथ एक-एक तिनके से अपना घोंसला बना लेती है। चींटी जब आत्मविश्वास के साथ चढ़ती है तब दीवार पर तो क्या पहाड़ पर भी चढ़ जाती है। एक छोटा सा पक्षी जब उड़ने की कोशिश करता है, उसकी माँ उसे पहले प्रेरणा देती है, उसके सामने थोड़ा-थोड़ा उड़ती है, वह पक्षी उड़ने की कोशिश करता है, जब वह गिरता है तो माँ उठाती नहीं है। जब वह गिरता है तो उसका गिरना उसका उत्साह बढ़ाता है कि अब की बार तो मैं उड़ान भर के ही रहूँगा और अन्ततोगत्वा उड़ान भरना सीख ही जाता है।

संभव है यदि माँ, बच्चे की सहायता कर देती वह स्वयं की कोशिश ना करता तो निरभ्राकाश में उड़ने का आनंद नहीं ले पाता। संघर्ष करके, अथक प्रयासों के पश्चात् प्राप्त की गई उपलब्धि विश्वसनीय होती है।

एक बार अध्यापक बच्चों को पढ़ा रहे थे Caterpillar तितली में कैसे बदलती है। समझाने के लिए उन्होंने बच्चों को दिखाया

और बताया देखो कुछ ही समय में तितलियाँ अपने खोल से बाहर निकलने की कोशिश करेंगी और हाँ उस समय कोई भी उन्हें छेड़ना मत। इतना कहकर अध्यापक कक्षा से बाहर चले गए। सभी विद्यार्थी देख रहे थे कि कितनी मुश्किल से तितलियाँ खोल तोड़कर बाहर निकल पा रही हैं। तभी एक विद्यार्थी ने करुणावश एक तितली का खोल तोड़ दिया तब तितली बिना मेहनत करे बाहर तो निकल आयी पर कुछ ही समय में मर गई। अध्यापक लौटकर आए तब बच्चों ने उन्हें सब बता दिया। सुनकर उन्होंने समझाया कि यह खोल से निकलने के लिये किया गया संघर्ष ही उनके पंखों को शक्ति देता है। तितली की मदद करने से वह संघर्ष नहीं कर पायी और अपने प्राण त्याग दिए।

स्वयं संघर्ष करने से, प्रयास करने से व्यक्ति की उपलब्धि चिरसंगिनी बनती है।

आत्मविश्वास वह पूंजी है जिसके बिना आत्मा का व्यापार किया नहीं जा सकता। आत्मविश्वास का आशय है अपनी आत्मा पर भरोसा करना और आत्मा पर भरोसा करना व्यक्ति की सबसे बड़ी शक्ति है। जब वही विश्वास और भरोसा दूसरों पर किया जाता है, तब वही उसके लिये कमजोरी बन जाता है। उसका विश्वास कब टूट जाये वह विश्वास तो पानी के बबूले की तरह से है, वह विश्वास कच्चे धागे की तरह, कच्चे सामान की तरह है वह विश्वास कभी भी एक झटके से टूट सकता है। दूसरों पर किया विश्वास तो उस पीपल के पत्ते की तरह है ज्यों ही हवा चलती है तो हिलने लगता है वह स्वयं टिक नहीं पाता। जो सुमेरु पर्वत की तरह से अपने चित्त में विश्वास जाग्रत करता है तो सामान्य हवा तो क्या, प्रलयकाल की तूफानी हवा भी उसे हिला नहीं पाती। आत्मविश्वासी व्यक्ति अपने में चट्टान के जैसा होता है उसे कौन डिगा सकता है? उसे कौन अपने पथ से विचलित कर सकता है? विश्व की सम्पूर्ण शक्ति भी मिल जाये तब भी आत्मविश्वासी का एक कदम भी डिगा न पाये।

लोग कहते हैं अंगद ने ऐसा पैर रखा कि कोई डिगा नहीं पाया किन्तु आत्मविश्वासी का पैर तो पूरा विश्व भी नहीं हिला सकता। यह व्यक्ति अपना कल्याण करने के लिये परमात्मा पर विश्वास करता है, सिद्धात्मा पर, संतमहात्मा पर किसी धर्मात्मा-पुण्यात्मा पर विश्वास करता है, ये अपने लक्ष्य को प्राप्त करने लिये जो आत्मा इसके लिये मित्र के समान है उस पर विश्वास करता है। ये बहुत सारे आत्माओं पर विश्वास कर लेता है किंतु जब तक बाहर के व्यक्तियों पर विश्वास करते रहोगे तब तक बाहर की वस्तुओं को तो प्राप्त कर सकते हो किन्तु आत्मा की निधि को प्राप्त नहीं कर सकते, आत्मा के स्वभाव को प्राप्त नहीं कर सकते। आत्मा के वैभव को प्राप्त करने के लिये आत्मा पर विश्वास करना बहुत जरूरी है। वह आत्मविश्वास आत्मा में ही उत्पन्न होगा। वह कहीं मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर में नहीं मिलेगा किसी पुराण, कुरान, गीता, बाईबिल में नहीं मिलेगा, वह आत्मविश्वास तुम्हें तुम्हारी आत्मा में मिलेगा। जैसे कुयें का पानी कुयें में ही मिलता है, नदी, सागर, तालाब पोखर या गड्ढ़े में नहीं मिलता वैसे ही आत्मा का विश्वास आत्मा के अतिरिक्त कहीं और नहीं मिल सकता। इस विश्वास को अपनी आत्मा में ही पैदा करो।

'Self Confidence is the bigest power in the world'

आत्मविश्वास संसार में सबसे बड़ी शक्ति मानी गयी है। जिसके पास वह शक्ति है तो संसार की सभी अन्य शक्तियाँ उसके पास वैसे ही खिंचकर चली आती हैं जैसे चुम्बक के माध्यम से लोहे के कण। आत्मविश्वासी का साथ संसार का प्रत्येक प्राणी देता है, जिसे अपने पर विश्वास नहीं वह दर-दर जाये, भटके अपना माथा टेके इससे कोई भी लाभ होने वाला नहीं, केवल अपने मन को बहलाना है। जैसे बच्चे के हाथ में खिलौना पकड़ा दिया तो बच्चा खिलौने में भूल गया। ऐसे ही झुनझुना पकड़ने की तरह से है दूसरे का विश्वास।

अपनी आत्मा पर विश्वास कायम किये बिना कोई भी व्यक्ति अपनी आत्मा को परमात्मा बनाने की बात तो छोड़ो एक अच्छे उद्देश्य को भी प्राप्त नहीं कर सकता।

एक व्यक्ति जिसके बाल्यपन में उसके पिता ने उसका साथ छोड़ दिया माँ ने भी जन्म देकर न केवल शरीर से अलग किया, वरन् ममता से भी अलग कर दिया था। वह बालक बेचारा अनाथ, असहाय, अपने किसी निकट संबंधी के यहाँ बड़ा हुआ। लेकिन वहाँ भी वे उसे अधिक दिन तक न ठहरा सके और उसे निकाल दिया गया। वह बेचारा अपने भाग्य की परीक्षा करता हुआ, अपने आत्मविश्वास को जाग्रत करता हुआ आगे बढ़ा। उसके हृदय में किसी के कहे गये ये शब्द ''कि तू जीवन में कुछ नहीं कर सकता''। सिवाय दूसरे की रोटी तोड़ सकता है, तेरे आते ही तेरे माता-पिता तुझे छोड़कर चले गये, चुभे हुये थे। वह इन शब्दों की चोट से पीड़ित यही सोचकर कि मैं दूसरों का आलम्बन नहीं लूँगा, अपने भाग्य का निर्माता स्वयं बनूँगा, दूसरों के पैरों पर नहीं चलूँगा। दूसरों के कंधों पर तो मुर्दे चलते हैं, जीवंत तो वह कहलाते हैं जो खड़े होकर अपने पैरों पर स्वयं चलते हैं।

उस व्यक्ति ने संकल्प लिया, अपने आत्मविश्वास को जाग्रत किया, किसी सेठ के यहाँ नौकरी की, शाम को सेठ ने 100-200 रूपये दिये, उसने और अच्छे से काम किया, अपनी योग्यता को बढ़ाते-बढ़ाते उसने पूरा काम करना सीख लिया। उसी काम की उसने अपनी एक दुकान खोली, दुकान भी अच्छी चली। उसके उपरांत उसने उसी कार्य की एक फैक्ट्री डाली। भाग्य जब साथ देता है तो कहते हैं मिट्टी को छुओ तो वह भी सोना हो जाती है। और भाग्य साथ तब देता है जब व्यक्ति का आत्मविश्वास जाग्रत हो जाता है, बिना आत्मविश्वास के शायद भाग्य भी साथ नहीं देता। जैसे बिना दूध के घी नहीं मिलता। घी जब भी निकलता है दूध में से निकलता है और भाग्य भी जगता है तो उसी का जगता है जो आत्मविश्वासी हो।

संसार में बहुत बल हैं कोई धन बल में स्वयं को श्रेष्ठ मानता है पर यहाँ तो धन वाले भी पराजित हो जाते हैं, कोई व्यक्ति कहता है मेरे वचनों में बहुत सामर्थ्य है मैं अपनी वाणी के द्वारा संसार के किसी भी व्यक्ति को प्रभावित कर सकता हूँ, शांत भी कर सकता हूँ, राग-द्वेष भी पैदा कर सकता हूँ, मेरे वचनों की शक्ति बहुत बड़ी है। किंतु वह शक्ति भी बहुत बड़ी नहीं है। कोई कहता है मेरा मनोबल इतना प्रबल है कि मैं यहाँ से बैठकर चिंतवन करूँ तो सामने वाले की भावना को बदल सकता हूँ और कोई व्यक्ति कहता है मेरे पास सैन्य बल है, कोई कहता है स्वजन बल है, ये सब स्वजनबल-परजनबल धनबल, तनबल, वचनबल और मनबल ये सभी बल आत्मबल के सामने निर्बल हो जाते हैं, दुर्बल हो जाते हैं। जिसका आत्म बल जाग्रत हो जाता है, उस बल के सामने संसार की पूरी शक्ति स्वतः ही नतमस्तक हो जाती है। आसमान में ज्यों ही सूर्य उदित होता है रात्रि में टिमटिमाने वाले तारे, वह चंद्रमा, सूर्य के प्रकाश को देखकर निःतेज हो जाता है फीका पड़ जाता है वैसे ही आत्मबल के आगे संसार के सभी बल निःतेज हो जाते हैं फीके पड़ जाते हैं।

महानुभाव! उस व्यक्ति ने अपने व्यापार को बढ़ाया और बढ़ाते-बढ़ाते खूब प्रतिष्ठा धन सम्मान सब कमाया। किंतु व्यक्ति का जब पुण्य का उदय आता है तो पाप का उदय भी आता है। उस व्यक्ति के जीवन में भी पाप का उदय आया, व्यापार में घाटा लग गया। वह बहुत हताश-निराश हो गया, उसके साथ बहुत सारे हितैषी जन उसके साथी जन थे पर अब अपना कोई नहीं दिखा। एक दिन वह बाग में उदास बैठा था, आत्महत्या के उद्देश्य से वहाँ बैठा था, तभी किसी ने पीछे से कंधे पर हाथ रखा-पूछा बेटा तुम ऐसे क्यों बैठे हो? उसने कहा-अरे! तुम्हें इससे क्या। दुबारा पूछा, वह फिर क्रोध में बोला जाओ यहाँ से अपना रास्ता नापो। तीसरी बार उसने फिर पूछा तब वह बोला मेरी कम्पनी में घाटा लग गया है इसीलिये आत्महत्या करने आया हूँ।

तुम क्या कर लोगे क्या तुम मुझे दे दोगे 50 लाख रूपया। उस व्यक्ति ने अपनी जेब से चैकबुक निकाली और उसमें 50 लाख लिख हस्ताक्षर कर दिये और दे दिये।

वह व्यक्ति अवाक् रह गया, कहता है लगता है आप इस नगर के सेठ हैं। आप वही 'बुद्धविहारी' तो नहीं हैं। हाँ मैं वही हूँ यह कहकर वह वृद्ध वहाँ से चला गया। और वह युवा अपने घर में पहुँचा। चैक उसके हाथ में था, सोच रहा था इन पैसों से अपनी कम्पनी आगे बढ़ाऊँगा और सफलता मिलेगी। किन्तु अचानक से मन में आया जिसने मुझे चैक दिया, उसका पता ठिकाना तो पूछना भूल गया, उसने भी नहीं पूछा कि मैं कौन हूँ। उसे मुझ पर कितना विश्वास था कि मेरा नाम पता ठिकाना पूछे बिना ही 50 लाख का चैक मुझे दे दिया और एक मैं हूँ जो अपने आप पर विश्वास नहीं करता। अब मुझे स्वयं पर विश्वास करना है, इस चैक को मैं ज्यों का त्यों वापस करके आऊँगा। 1 साल का समय लेकर आत्मविश्वास को जाग्रत करके, चैक को तो ज्यों का त्यों रख दिया अपनी कम्पनी को उत्साह के साथ उसी ऊँचाई पर ले गया।

महानुभाव! वह व्यक्ति अपने कार्य में सफल हुआ, ऐसा कभी हो ही नहीं सकता कि व्यक्ति का आत्मविश्वास जाग्रत हो जाये और उसे सफलता न मिले। यूँ कहिये सफलता की चादर आत्मविश्वास के साथ सदा रहती है जैसे चंद्रमा के साथ उसकी चांदनी, सूर्य के साथ उसका प्रकाश रहता है ऐसे ही सफलता के साथ आत्मविश्वास रहता है। इसलिये आप सभी लोग भी अपने आत्म विश्वास को जाग्रत करो। जो लक्ष्य आपको सर्वश्रेष्ठ लगता है उस समीचीन लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये आप पुरुषार्थी बनो। यही आपके जीवन की प्रक्रिया व पुरुषार्थ का मार्ग होना चाहिये यही श्रेष्ठतम सफलता का उपाय है, उसे आप सभी प्राप्त करें। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....

॥श्री शांतिनाथ भगवान की जय॥

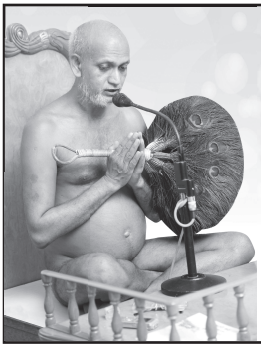

सुसंस्कार

महानुभाव! जीवन निर्मूल्य चीज है और बहुमूल्यशाली भी। संसार में जितने भी प्राणी हैं, वे सभी अपना जीवन जीते हैं, जन्म से लेकर मृत्यु तक की दूरी जीवन नाम से संबोधित की जाती है। जैसे एक किनारे से दूसरे किनारे तक बहने वाला जल ही नदी कहलाता है। ऐसे ही जन्म और मृत्यु दोनों तट हैं उन दोनों के बीच में प्रवाहमान जीवन होता है। वह प्रवाहमान जीवन जब समीचीन होता है तब स्व और पर के लिये सुखद होता है। वही प्रवाहमान जीवन असम्यक् और मिथ्या होता है तब स्वपर के लिये दु:खद हो जाता है।

जीवन को सुखद कैसे बनाया जाये? जीवन को सुखद बनाने के लिये सबसे बड़ी चीज ये है कि हमारा जीवन सम्यक्दिशा में, सम्यक्गति से, सम्यक् लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये गतिशील हो। दिशा भी सम्यक्, गति भी सम्यक्, मार्ग भी सम्यक्, लक्ष्य भी सम्यक् ये चारों सम्यक् होते हैं तब जीवन में सुख-शांति का अनुभव होता है। इन चारों चीजों को एक शब्द में कहना चाहें तब इस शब्द का नाम आयेगा ''सुसंस्कारी जीवन''।

सुसंस्कारी जीवन स्वयं के लिये भी सुखद होता है वृक्ष की शीतल छांव की तरह से। दूसरों के लिये भी सुखद होता है फल प्रदान करने की अपेक्षा से। वह जीवन ही सुख शांतिपूर्वक व्यतीत हो सकता है। संस्कार विहीन जीवन नि:संदेह कंटकाकीर्ण मार्ग की तरह से दु:खद होता है। सुसंस्कारों से युक्त जीवन शीतल छांव, सुमधुर फल और पुष्पों

से युक्त वृक्ष की तरह से है। जैसे ठूंठ कभी आदर प्राप्त नहीं करता, ठूंठ स्व-पर के लिये सुख नहीं दे पाता, उसे देखकर किसी को आनंद नहीं आता, उस ठूंठ को देखकर के चित्त में नीरसता आती है। चित्त में नकारात्मक ऊर्जा का संचार होता है व्यक्ति हताश और उदास हो जाता है। किंतु वही व्यक्ति जब सरस फलों से युक्त वृक्ष को देखता है तो उसके नेत्रों में चमक आ जाती है, चेहरा खिलने लगता है और अंतरंग में शक्ति का संचार होने लगता है।

किसी पुष्पवाटिका के बीच से निकलता हुआ व्यक्ति आनंद से भर जाता है। सुसंस्कारी जीवन जीना कठिन तो जरूर है किंतु असंभव नहीं। सुसंस्कारी जीवन जीने वाले व्यक्ति ज्यादा नहीं होते, कोई-कोई होते हैं। पशुओं में अनेक जातियाँ-प्रजातियाँ हैं किन्तु सभी पशु गाय नहीं होते, देव भी मुख्यतः चार प्रकार के होते हैं सभी देव वैमानिक देव नहीं होते। देवों में इन्द्र आदि श्रेणियाँ भी होती हैं सभी देव इन्द्र नहीं होते। मनुष्यों में कोई सामान्य होता है, कोई विशेष होता है किंतु प्रत्येक मनुष्य राजा या चक्रवर्ती नहीं होता, तीर्थंकर या कामदेव नहीं होता, बलभद्र या कुलकर नहीं होता। इसी तरह से पर्वत बहुत सारे हो सकते हैं किंतु प्रत्येक पर्वत सुमेरु पर्वत नहीं हो सकता। रत्न भी बहुत हो सकते हैं पर प्रत्येक रत्न को वज्र हीरा नहीं कहा जा सकता। इसी तरह से संसार में रहने वाले अनंत जीवों में असंख्यात मनुष्य हैं उन असंख्यात में भी बहुत कम ऐसे हैं जो किसी के लिये आदर्श बन सकते हैं, किसी के लिये प्रेरक या सहारा बन सकते हैं, किसी के लिये सुख शांति का मार्ग बन सकते हैं हर मनुष्य इन विशेषताओं से युक्त नहीं होता।

संस्कार का महत्त्व क्या है? किसी लुहार के पास कच्चा लोहा आता है, वह लुहार उस लोहे को पीटकर के उसकी सिल्ली बना देता है। कच्चा लोहा माना कि उसने 20 रु. किलो खरीदा, उसे पक्का बनाकर 30 रु. किलो बेच दिया। किन्तु दूसरा लुहार उस लोहे को केवल पक्का नहीं करता, उस लोहे को पीटकर कोई आकृति बना

देता है तवा आदि बना देता है फिर वह 1 किलो का तवा 30 रु. का नहीं 50 रु. का भी बिक जाता है। पुनः कोई तीसरा लुहार उस लोहे के माध्यम से केवल तवा नहीं चिमटा बनाता है तो उसने 1 किलो लोहे का मूल्य 100 रु. भी वसूल कर लिये। अगला व्यक्ति उसी लोहे को पीटकर छोटी-छोटी कीलें बनाता है उस कील के माध्यम से 1 किलो लोहे का मूल्य 150 रु. वसूल कर लेता है। और कोई अन्य व्यक्ति उसी लोहे के ताले बनाता है और उसने 200-300 रु. वसूल कर लिये अन्य कोई व्यक्ति उसी लोहे को और शुद्ध करके सुई बनाता है। 1 किलो लोहे से 1000 रु. भी कमा लेता है अन्य कोई व्यक्ति उस लोहे को और शुद्ध करता है उस लोहे से किसी मशीन आदि के पुर्जे बनाता है एक-एक पुर्जा दो-पाँच हजार का चला जाता है। एक किलो लोहे का मूल्य वसूल किया। ज्यों-ज्यों लोहे में अच्छे संस्कार आते चले गये त्यों-त्यों लोहे का मूल्य बढ़ता चला गया।

खेत की मिट्टी संस्कार विहीन है तो मिट्टी का मूल्य मिट्टी के बराबर है निर्मूल्य कहा जाता है। उसी मिट्टी से किसी ने घर बनाया तो कीमत बढ़ गयी, किसी ने घर न बनाकर बड़े-बड़े खिलौने बनाये किंतु रंग नहीं डाला तो कीमत थोड़ी बढ़ गयी किसी ने खिलौने बनाये उस पर रंग भी कर दिया तो कीमत और बढ़ गयी। महानुभाव! मिट्टी को संस्कार दिये तो वह मूल्यवान् बन गयी, लोहे में संस्कार दिया मूल्यवान् बन गया। ऐसे ही हीरा जब कच्चा निकाला जाता है तब इतना मूल्यवान् नहीं होता जब इसे तराशा जाता है, शुद्ध किया जाता है इसका मूल्य बढ़ता चला जाता है। पाषाण जब जमीन पर पड़ा है ठोकर खा रहा है उसका कोई मूल्य नहीं किंतु उसी पाषाण को जब कोई कुशल शिल्पकार अपने हाथ में लेता है, उसको तराशता है, मूर्ति बनाता है। यदि किसी व्यक्ति की मूर्ति बनायी तो उसे 200-500 रु. मिले, किसी ने देवी-देवता की बनायी 1000 रु. मिल सकते हैं। किसी ने वह मूर्ति वीतरागी प्रभु परमात्मा की बनायी, जिसके प्रति लोगों की बड़ी आस्था है, जिसके चेहरे

पर ऐसे भाव झलक रहे हैं कि इस प्रकार का भी शांतपरिणामी कोई इंसान को सकता है जिसे देखकर के आश्चर्य हो तो उसकी कीमत तो कुछ दी ही नहीं जा सकती, मूर्तिकार से कहता है इसकी न्यौछावर राशि क्या है? व्यक्ति लाखों रूपये न्यौछावर करके उस मूर्तिकार को दे देता है। पत्थर वही था परंतु मूल्य बढ़ गया संस्कारों के माध्यम से।

महानुभाव! संस्कार विहीन इंसान केवल एक सामान्य इंसान है ज्यों-ज्यों संस्कारों का बीजारोपण होता है, संस्कार अंकुरित होते हैं त्यों-त्यों व्यक्ति पुण्यात्मा बनता है, महात्मा बनता है और संस्कारों की पूर्णता होने पर वह परमात्मा बन जाता है। संस्कारों का महत्त्व बाल्यअवस्था से लेकर वृद्ध अवस्था तक रहता है, केवल लौकिक शिक्षा ही व्यक्ति का उत्थान करने वाली नहीं है, लौकिक शिक्षा के माध्यम से केवल अर्थ का प्रबन्धन किया जा सकता है। धन के माध्यम से मकान-वाहन-भोग विलास की वस्तुयें खरीदी जा सकती हैं किन्तु सुसंस्कार के बिना जीवन में सुख शांति की प्राप्ति नहीं की जा सकती। जीवन में सुसंस्कार आवश्यक हैं माता-पिता का कर्त्तव्य केवल इतना ही नहीं कि बच्चे को जन्म दिया, लाड प्यार किया, उसने गलती की, नुकसान किया फिर भी लाड प्यार दिया, इससे तो बच्चा बिगड़ता चला जायेगा।

जन्म और लाड़ प्यार से जरूरी है सुसंस्कार देना। बच्चे को दिये गये सुसंस्कारों से वह यावज्जीवन सुखी रहेगा, यावज्जीवन आपके प्रति कृतज्ञ रहेगा।

प्रारंभिक अवस्था में बच्चों का किया ऊधम माता-पिता को अच्छा लगता है पर वह बुरा तो पहले भी था। किंतु छोटेपन की चेष्टायें क्षम्य होती थी, किन्तु यदि वे ही बातें आगे चलकर भी रहें तो बहुत दुःखदायी हो जाती हैं। बालक को उच्च विद्यालय में उच्च शिक्षा देने के साथ-साथ उच्च संस्कार भी देने चाहिये। उसे ईमानदारी, सत्यता,

न्याय, वात्सल्य, वृद्ध सेवा, परोपकार, सहयोग की भावना इत्यादि गुणों के संस्कार देना चाहिये। उसके चित्त में करुणा, दया, रहम के संस्कारों का बीजारोपण करना चाहिये। यदि ऐसा किया जाता है तो निःसंदेह वे बालक अपना पूरा जीवन सुखद ही व्यतीत करते हैं और जहाँ पहुँच जाते हैं वहाँ के वातावरण को भी सुखद बना देते हैं।

संस्कारवान् बालक प्रज्ज्वलित दीपक की तरह से है वह दीपक जहाँ कहीं भी रहेगा अपना प्रकाश फैलायेगा। संस्कार विहीन बालक बुझे हुये दीपक की तरह से है, किसी कुल में बुझे दीपक के समान संस्कारविहीन यदि 10 पुत्र भी हों तो वे बेकार हैं और संस्कारवान् एक पुत्र भी हो वह अपने कुल के नाम को रोशन कर सकता है, देश के नाम को ऊँचाई तक पहुँचा सकता है। मनीषियों ने भी कहा है–

एकेनापि सुपुत्रेण सिंही स्वपति निर्भयम्।
सदैव दशभिः पुत्रैर्भारः वहति गर्दभी॥

गधी दस पुत्रों को जन्म देकर भी जीवन पर्यन्त बोझा ढोती है और वहीं सिंहनी एक पुत्र को जन्म देती है और निर्भीक होकर रहती है।

संस्कारविहीन धृतराष्ट्र के सौ पुत्र स्वयं के नाम को लजाने वाले व पिता के नाम को लजाने वाले हुये, अपने कुल में कलंक लगाने वाले हुये। इधर संस्कारवान् एक ही पुत्र रामचन्द्र जी, कौशल्या के इकलौते पुत्र जो संस्कारों से संयुक्त थे जिनका नाम आज भी लेने में गौरव होता है। एक संस्कारविहीन पुत्र रावण जिसका नाम लेने में भी शर्म आती है। संस्कार विहीन चाहे कितना भी बड़ा पद प्राप्त कर ले वह सदैव निंदा का ही पात्र होता है। रावण तीन खण्ड का राजा था, विद्याधर था, हजारों विद्याओं का स्वामी था, उसके अधीनस्थ हजारों विद्याधर थे, उसका स्वर्ण का कोट था, स्वर्णमय लंका थी यह सब होने के बावजूद भी उसके पास सुसंस्कार नहीं थे। इसलिये उसका जीवन प्रशंसनीय, पूज्यनीय, अर्चनीय, आदरणीय, सम्मानीय नहीं रहा।

रामचन्द्र जी चाहे वनवास में रहे, चाहे अयोध्या में रहे, चाहे कहीं भी रहे सुसंस्कार से युक्त रहे, इसलिये जहाँ कही भी गये उनका सम्मान हुआ। न केवल उस समय आज भी यदि कहीं रामचंद्र जी का चित्र दिखाई देता है लोग हाथ जोड़ लेते हैं। संस्कारों में वह शक्ति है। भारतीय नारी जब संस्कार से युक्त होती है तब निःसंदेह लोक में सम्मान को प्राप्त करती है।

वह अजंना सती जो महेन्द्रपुर के राजा महेन्द्र व हृदयवेगा की पुत्री थी, जिसका पाणिग्रहण संस्कार, कुमार पवनंजय के साथ हुआ जो आदित्यपुर के महाराज प्रहलाद और केतुमती के पुत्र थे। अंजना कर्म के उदय से अपने पति के द्वारा छोड़ दी गयी, पुनः जब उसकी सास ने उस पर दोष लगाया क्योंकि सास को ज्ञात नहीं था कि पवनंजय मेरी पुत्रवधु के पास मिलने आया था। सास ने सोचा जब वह 22 वर्ष से बोला ही नहीं तो ये गर्भवती कैसे हुयी, उसके मन में शंका हुयी, उसने अपने कर्त्तव्य का पालन किया, अंजना को घर से निकाल दिया। वह अंजना गर्भ का भार लेकर सबसे पहले अपने माता-पिता के यहाँ जाती है, वहाँ भी वह सम्मान प्राप्त नहीं करती। माँ ने सुना अंजना आ रही है वह थाल सजाकर स्वागत के लिये तैयार हो गयी किंतु जब सुना अंजना एक दासी के साथ आ रही है, उसे घर से निकाल दिया गया है, माँ ने उस बेटी को स्थान नहीं दिया क्योंकि बेटी के लिये स्थान तो ससुराल में था। किंतु आज की मातायें कितने लाड प्यार में अपने धर्म को भी भूल जाती हैं। यदि बेटी ससुराल में कोई गलत कार्य करके भी आती है तो माँ उसे अपने आगोश में छिपा लेती है। जिससे कुसंस्कारों की वृद्धि होती चली जाती है। आजकल तलाक जैसे केस चल रहे हैं क्यों? आज दो-दो शादियों जैसे केस चले रहे हैं क्यों? ये सब भारतीय संस्कृति का स्खलीकरण है। धर्म का सत्यानाश करना है। संस्कार होते तो माँ कहती बेटा तेरा वही घर है तुझे वहीं रहना है चाहे कैसे भी रह।

सीता जंगल में रही, सीता ने न तो आत्महत्या जैसा कोई

कुकृत्य किया, न उसने अपने माता-पिता को दोष दिया, न सास ससुर की निंदा की, न अपने पति की निंदा की। संस्कारवान् नारी किस प्रकार अपने कुल का नाम रोशन कर सकती है, किस प्रकार अपने पुत्रों को महान् बना सकती है। वह पुत्री ध्यान रखती है मेरे कारण मेरे पिता की निगाह नीची न हो जाये, मेरे कारण मेरे पति के हृदय में कोई कष्ट न हो, मेरे कारण कहीं मेरा कुल कलंकित न हो जाये।

महानुभाव! काकाकालेलकर, हजारी प्रसाद द्विवेदी और रामधारी सिंह दिनकर ये तीनों प्रमुख हस्ति एक बार संसद भवन में पहुँचे। काका कालेलकर को देखकर के हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने कहा ये हमारे गुरुजी हैं। उन्हें वही संसद भवन में साष्टांग नमस्कार करने लगे। रामधारी सिंह दिनकर ने देखा मेरे गुरुजी, उन्होंने भी नमस्कार किया। संसद भवन में उन्होंने ये नहीं देखा कि कोई क्या कहेगा? संस्कारवान् व्यक्ति किसी भी प्रकार अपने धर्म का पालन करता है। वह लोकलाज या कोई क्या कहेगा यह नहीं देखता जिसे जो कहना है वह कहे। रामचंद्र जी जब वन को गये तब उन्होंने ये नहीं सोचा कि दुनिया क्या कहेगी, लोग रोते रहे। उन्होंने संस्कारों के कारण अपने पिता की आज्ञा का पालन किया। श्रवण कुमार अपने माता-पिता की सेवा करते रहे।

महानुभाव! एक व्यक्ति को कहीं हीरा मिला वह अपनी पत्नी के आभूषण बनवाना चाहता था, किन्तु उसके माता पिता के संस्कार थे, उसने उस हीरे की मूर्ति बनवायी। जो आज जैनबद्री मूढबद्री में विराजमान है जिनके दर्शन कर लाखों व्यक्ति पुण्य कमा रहे हैं। संस्कार की महिमा अचिंत्य है। भाऊराव पाटिल का नाम आपने सुना होगा जिन्होंने 720 स्कूल बनवाये, 6 कॉलेज चल रहे हैं। एक दिन सब्जी खरीदने गये, उस वृद्धा माँ के पास एक छोटा बच्चा बैठा था, उससे पूछा कौन सी कक्षा में हो? माँ ने कहा हम तो इतने गरीब हैं सब्जी बेचकर जैसे तैसे घर चला रहे हैं इसे कैसे पढ़ायेंगे। भाऊराव पाटिल उस बच्चे को अपने साथ ले गये उसे पढ़ाया-लिखाया। वह

बालक बड़ा होकर बैरिस्टर बना। इस बच्चे ने अपने घर में भाऊराव पाटिल की मूर्ति स्थापित की। लोग कहते मंदिर चलो, तो वह कहता मैंने तो जीवंत भगवान देखे हैं मेरे ये ही भगवान हैं।

महानुभाव! संस्कारों का ये ही प्रभाव होता है। माणिकचंद पाणाशाह ऐसे व्यक्ति जो विद्यार्थियों को पढ़ाते उन्हें संस्कार देते थे। इतना ही नहीं अपने घर भोजन के लिये बुलाते थे, उन्हें छात्रवृत्ति देते थे। वे उनसे कहते थे जीवन में तीन बातें ध्यान रखना पहली बात धर्म को कभी नहीं छोड़ना, दूसरी बात समाज की सेवा करना, तीसरी बात राष्ट्र के प्रति श्रद्धावान रहना। निष्ठा के साथ अपने कर्त्तव्यों का पालन करना।

महानुभाव! संस्कारवान् व्यक्ति इसी प्रकार के होते हैं। हम और आप सभी संस्कारवान् बनें। अपना जीवन सुखी बनायें और दूसरों के सुखी जीवन की आधारशिला बनें। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....''

॥श्री शांतिनाथ भगवान की जय॥

सकारात्मक सोच

महानुभाव! संसार के समस्त प्राणियों में मनुष्य एक उत्कृष्ट प्राणी है। वह इसलिये क्योंकि वह उच्च कोटि के विचारों का पुंज है। केवल इतना ही नहीं, उन विचारों को साकार रूप भी दे सकता है। ज्ञान की अपेक्षा से कहेंगे तो सभी देव अविधज्ञानी होते हैं किंतु वे उस सम्यग्ज्ञान को जीवन में धारण नहीं कर सकते अर्थात् सम्यग्ज्ञान का जो फल है वैराग्य, संयम, तप और ध्यान वह उस पर्याय में संभव नहीं है। मनुष्य विचारशील प्राणी है, वह विचार करके न केवल अपनी आत्मा का कल्याण करने में समर्थ होता है वरन् अन्य अनेकों प्राणियों के कल्याण का प्रेरक निमित्त भी बनता है। वही दूसरों के कल्याण में सहयोगी, सहभागी व आधाररूप बनता है। जो व्यक्ति इस प्रकार की विचार शक्ति से रहित है वह स्वयं के लिये व दूसरों के लिये भारभूत बन जाता है।

महानुभाव! विचार दो प्रकार के होते हैं। एक सकारात्मक, दूसरे नकारात्मक। हम विचारों को सीढ़ी (जीना) की उपमा देते हैं। जिसकी सीढ़ियाँ ऊपर की ओर हैं अर्थात् जिसके विचार उन्नतशील हैं उसका जीवन भी उन्नतशील होता है। जिसके विचार अधोगामी हैं पततोन्मुखी हैं वह इंसान भी अधोगामी, दुर्गति व दुरावस्था का पात्र बन जाता है। विचारों में ऊपर उठाने व गिराने दोनों की शक्ति विद्यमान है। जैसे जो शक्ति सीढ़ियों में होती है, उसी सीढ़ी का सहारा लेकर व्यक्ति ऊपर पहुँच सकता है, उसी का सहारा लेकर नीचे भी उतर सकता है।

सामान्य विचार जिसमें सकारात्मक और नकारात्मक कोई ऊर्जा नहीं है वह उस प्लेटफार्म की तरह से हैं जहाँ से मार्ग प्रारंभ हो रहा है ऊपर जाने का और नीचे आने का। किंतु जब चलना होता है तो या तो ऊपर की ओर होता है या नीचे की ओर होता है। सकारात्मक विचारों को कहते हैं ऊपर चढ़ने वाली सीढ़ी, नकारात्मक विचारों को कहते हैं नीचे उतरने वाली सीढ़ी। **'Be positive Be optimist"**

आप सकारात्मक बनो नकारात्मक नहीं। नकारात्मक जिसका जीवन बन जाता है ऐसा व्यक्ति स्वयं ही नकारात्मक ऊर्जा का पुंज होता है। क्योंकि इस चित्त में दोनों प्रकार की ऊर्जा उत्पन्न करने की शक्ति है। यूँ कहे संसार में विद्यमान पुद्गल के परमाणु दोनों प्रकार की शक्ति से सहित हैं वे प्रकाश के परमाणु भी बन सकते हैं और अंधकार के भी। परमाणु वही हैं जैसे दूध है उसमें शक्कर डाल दी तो मीठा हो गया, नमक डाल दिया तो खारा हो गया इसी प्रकार विचारों को भी हम दोनों प्रकार का रूप दे सकते हैं।

सकारात्मक विचार मानव की सबसे बड़ी शक्ति होती है और नकारात्मक विचार उसकी सबसे बड़ी कमजोरी होती है। सकारात्मक विचार ही एक सामर्थ्ययुक्त प्रबल मित्र है, सहारा है और आलम्बन है। नकारात्मक ऊर्जा ही उसके लिये सबसे बड़ा शत्रु है। जिसके पास नकारात्मक ऊर्जा है उसे शत्रु पालने की क्या आवश्यकता? नकारात्मक ऊर्जा वाले को अन्य प्रकार का दुःख संकट प्राप्त करने की क्या आवश्यकता?

महानुभाव! कुछ लोगों की धारणा होती है कि सकारात्मक ऊर्जा के मायने हैं मैं अच्छा-अच्छा सोचूँ। जैसा मैं सोच रहा हूँ वैसा ही हो जायेगा, या मैंने जो Target बनाया है उसे प्राप्त करके ही रहूँगा या मैं सफल होऊँगा ही, कोई प्रतिकूलता नहीं आयेगी। जैसे किसी विद्यार्थी ने सोचा मेरे 98% Marks ही आयेंगे तो ये सकारात्मकता नहीं है। इतने मात्र का नाम सकारात्मकता नहीं है जो इस प्रकार की धारणा बनाकर

बैठ जाते हैं उन्हें कई बार हताश उदास निराश व जीवन से हाथ धोते देखा गया है। विद्यार्थी ने सोचा 98% आने चाहिये खूब planning की, मेहनत की आगे के उद्देश्य भी निर्धारित कर लिये, पर उसके मन के मुताबिक नंबर नहीं आये तो कई बार Newspaper में आता है कि सोसाइड कर ली। कभी कोई व्यापारी हिम्मत हार जाता है तो कभी कोई किसान, यदि प्राकृतिक प्रकोप से फसल नष्ट हो गयी तो वह किसान भी पागल जैसा हो जाता है। इस प्रकार की कई ऐसी बातें देखने में आती हैं। इसका नाम सकारात्मकता नहीं है।

सकारात्मकता क्या है? जो कुछ भी शक्ति हमारे पास है मन-वचन-तन की शक्ति, धन की, स्वजन की, मित्रों की भी शक्तियों का सही सदुपयोग करना ही सकारात्मक सोच है। सकारात्मक सोच का आशय है मैं सबका सहयोगी बनूँगा और मुझे विश्वास है सब मेरे सहयोगी बनेंगे। सकारात्मक सोच का आशय है यदि 98% नंबर नहीं आये 96% आ गये तो वह सोचता है चलो अच्छा हुआ, मुझे इतने ही चाहिये थे 98% प्राप्त करके मुझे अहंकार आ जाता। अच्छा हुआ किसी और के आ गये। सकारात्मक सोच का आशय यह नहीं कि मेरे पास जो दूध रखा है वह खराब होगा ही नहीं, वरन् आशय यह है कि यदि दूध फट गया तो उसका मावा भले ही नहीं बनाया जा सकता, कोई बात नहीं, दही भी नहीं जमाया जा सकता किन्तु छैना बनाकर रसगुल्ला तो बनाया जा सकता है। जो कुछ भी मिला उसमें सकारात्मक भावना रखो।

एक व्यक्ति के द्वार के आगे कोई महात्मा रात्रि विश्राम कर रहा था। महात्मा ने सोचा हो सकता है अब भक्ति का समय हो गया होगा, वहीं सामने कोई एक गृहस्थ भी सो रहा था, उन महात्मा जी ने उससे पूछ लिया-भैया! कितने बज रहे हैं। वह गृहस्थ प्रातःकाल की मीठी-मीठी नींद ले रहा था, गुस्से में उठा और संत महात्मा के तीन डंडे मार दिये और बोला तीन बजे रहे हैं। संत महात्मा तो डंडे खाकर

भी हँसने लगे। भगवान्! तेरा बहुत-बहुत शुक्रिया, तू कितना दयालु है कृपालु है। अच्छा है घड़ी में तीन ही बज रहे हैं अगर 12 बजे होते तो मेरी क्या हालत हो जाती। ये होती है सकारात्मक सोच।

एक फकीर जंगल में प्रभु भक्ति में झूम रहा था, उसके मन में कोई इच्छा नहीं कोई विकार नहीं अपने में आनंदित बैठा था। अचानक एक भक्त आया और बोला-महात्मा जी! आज आपका निमंत्रण हमारे यहाँ है चलो खीर पूड़ी बनी है। फकीर गया खीर-पूड़ी खाकर आ गया। अगले दिन उनके पास एक गरीब आया, महात्मा जी! आज आपका निमंत्रण मेरे यहाँ है किंतु मैं गरीब हूँ मैं आपको सूखी रोटी खिला पाऊँगा। फकीर बोला-वाह भगवान् कल मैं खीर पूड़ी खाकर आया था, मेरा पेट खराब हो गया था आज सूखी रोटी खाने का मौका दे दिया तू कितना दयालु है। एक दिन वह फकीर भूखा खड़ा तपस्या कर रहा था। तभी एक व्यक्ति जो रोज इसकी बातें सुनता था कि कैसा ये महात्मा है, चाहे खीर पूड़ी मिले तब भी भगवान् को शुक्रिया करता है, सूखी रोटी मिले तब भी शुक्रिया अदा करता है। आज देखता हूँ क्या करता है। तभी उसकी थाली में किसी ने फिर से सूखे टिक्कर रख दिये। वह फकीर उन्हें देखकर खुश हो गया, टिक्कर बहुत सूखे थे, सोचा इन्हें पानी के साथ लूँगा तो गले में अच्छे से उतर जायेंगे। वह पानी लेने नदी किनारे जाने लगे, तभी एक कुत्ता उनकी रोटी को मुंह में दबाकर भाग गया। फकीर लौटकर आया, देखा रोटी नहीं है वह भगवान् को पुनः याद करता है, भगवान्! तू मेरा कितना ध्यान रखता है। मुझे कितने दिन हो गये थे, मैंने कई दिनों से उपवास नहीं किया था, आज तूने मुझे उपवास का मौका दे दिया तू कितना ख्याल रखता है मेरा।

महानुभाव! यह होती है सकारात्मक सोच। हमारे पास जो है उसी में अच्छे से अच्छा करने का प्रयास करें। यदि हम अच्छे से अच्छा नहीं कर पाते हैं तब ये ही समझना चाहिये कि हमारी सोच सकारात्मक नहीं है।

एक व्यक्ति जो युवा था, सुंदर था। उसने कई कंपनियों में जॉब ढूंढ रखी थी, उसके पास कई कम्पनियों के ऑफर आये। वह बहुत होशियार था, एक दिन वह किसी सुंदर लड़की को देखता है, उस लड़की को देखकर उसके मन में भाव आये काश ये मेरा जीवन साथी बन जाये। उस युवा ने उसे अपना जीवन साथी बनाने का प्रयास भी किया। माता-पिता से भी चर्चा की, लड़की से व उसकी सहेलियों से भी चर्चा की, किंतु अन्ततोगत्वा नतीजा यह निकला कि वह लड़की उसे प्राप्त न हो सकी, उस लड़की का विवाह उसी नगर के किसी बहुत बड़े व्यक्ति के साथ हो गया। जो किसी कम्पनी का स्वयं मालिक था। वह युवा उस लड़की की याद में महीनों तक रोया, कई दिनों तक भोजन भी नहीं किया। उसके मित्रों ने उसे खूब समझाया। मित्रों की अच्छी सलाह से युवा ने भी उस लड़की का विकल्प छोड़ दिया।

किंतु कहते हैं फोड़ा ठीक हो गया निशान फिर भी रह गया। जहाँ अग्नि जलायी थी, अग्नि तो बुझ गयी पर पृथ्वी अभी भी गर्म है। ऐसे ही उसके चित्त में उसके प्रेम की लकीर खिंची रह गयी थी। अचानक प्रातः काल वह व्यक्ति चाय पीते-पीते अखबार पढ़ रहा था, उसने अखबार में समाचार पढ़ा कि जिस व्यक्ति के साथ उस लड़की का विवाह हुआ था उसकी मृत्यु हो गयी। उसे बहुत बड़ा झटका लगा ये पढ़कर कि मृत्यु हुयी नहीं, उसने स्वयं कर ली। उसने वह पत्र भी पढ़ा जो मरते वक्त उस व्यक्ति ने लिखा था वह भी अखबार में छपा था। टी.वी. पर न्यूज देखी तो मालूम चला कि उस लड़की ने उसे इतना तंग कर रखा था कि उसके कारण उसका जीना ही मुश्किल हो गया था। वह उसे मानसिक रूप से बहुत टॉर्चर करती थी, वह व्यक्ति तो बहुत प्रतिष्ठावान् था, अपनी बात किसी से कह नहीं सकता था, सह नहीं सकता था और आखिरकार उसने आत्महत्या जैसा कुकृत्य ही उचित समझा।

वह युवा सोचता है। भगवान! मैंने तो आपको बहुत दोष दिया था, सभी शिकायतें मुझे आपसे ही थी किन्तु मैं कितना गलत

था। हे प्रभु! आपका धन्यवाद यदि उस लड़की की शादी मेरे साथ हो जाती तो मेरा जीवन भी बर्बाद हो गया होता। वह व्यक्ति तो इतना प्रतिष्ठावान्, धनी सहनशील था, फिर भी वह उसको सहन नहीं कर पाया। उसने अपने पत्र में लिखा था मैं जानता हूँ आत्महत्या जैसे घृणित पाप को करना कितना बुरा है पर उससे भी बुरा है इस महिला के साथ रहना। किसी ने ठीक लिखा है-

''दुष्ट संग नहीं देय विधाता, या से भलो नरक का वासा''

महानुभाव! कहने का आशय यह है कि व्यक्ति यह सोचे कि मुझे जो कुछ मिला है मेरे लिये उचित है। कई बार युवा पीढ़ी हताश हो जाती है, थोड़ी सी भी असफलता वे सहन नहीं कर पाते और उदास होकर अपने जीवन की राह बदल लेते हैं। मैं उन युवा भाई-बहिनों से कहना चाहूँगा आप सदैव सकारात्मक ऊर्जा वृद्धिंगत करते रहो वह सकारात्मक ऊर्जा तुम्हें जमीन से चोटी तक पहुँचा सकती है। उड़ने वाला व्यक्ति यदि एक बार गिर जाये तो उठ नहीं सकता, किंतु चलने वाला या रेंगने वाला भले ही शनैः शनैः अपनी मंजिल तक पहुँच सकता है। हमें आसमान छूना है, पर्वत की चोटी नहीं छूनी। आसमान छूना है परंतु रेंगकर छू नहीं सकते, उड़कर गिरने का डर है। हम आसमान छूना चाहते हैं किन्तु अपने कद को बढ़ाकर।

''जब हौसला कर लिया है आसमान को छूने का, तो फिजूल है कद मापना आसमान का''।

जिस व्यक्ति ने मन में संकल्प कर लिया है कि मुझे यह कार्य करना है और मैं करके ही रहूँगा तब फिर व्यवधानों के बारे में, प्रतिकूलताओं के बारे में सोचना मूर्खता है। सकारात्मक सोच के साथ उन्नति-सर्वोन्नति के पथ पर, सुख के मार्ग पर गतिशील हों। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान की जय।।

जो होता है वही अच्छा

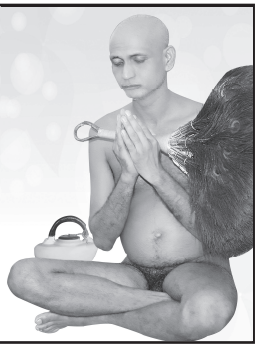

महानुभाव! संसार अनादि काल से परिवर्तनशील है, और आगे भी परिवर्तनशील ही रहेगा। क्योंकि परिवर्तन होना इस संसार का स्वभाव है।

Changing is the nature of the nature

परिवर्तन प्रकृति की प्रकृति है। और प्रकृति का, स्वभाव का कभी अभाव नहीं होता। संसार में जो कुछ भी परिणमन हो रहा है, छः द्रव्यों में जो परिणमन हो रहा है वह सभी परिणमन उन्हीं द्रव्यों के आश्रय से हो रहा है। परिणमन में कोई अन्य द्रव्य निमित्त तो बन सकते हैं किन्तु जब तक वह द्रव्य स्वयं परिणमन न करे तब तक परिणमन निमित्त नहीं करा सकता। जिस द्रव्य में जैसा परिणमन होने की शक्ति है उसमें वैसा ही परिणमन हो सकता है। जैसा परिणमन होने की शक्ति नहीं है वैसा परिणमन नहीं हो सकता।

शास्त्रीय भाषा में कहें तो भव्य और अभव्य। जो पर्याय उस द्रव्य में होने के योग्य है उसे भव्य कहते हैं, जो पर्याय उसमें होने के योग्य नहीं है उसे अभव्य कहते हैं। मिट्टी से मिट्टी के बर्तन बनाये जा सकते हैं उस प्रकार के बर्तनों का उससे बनना वह पर्याय उसके लिए भव्य है। स्वर्णरूप आकार या आभूषण रूप अवस्था को वह मिट्टी प्राप्त नहीं कर सकती वह पर्याय उसके लिये अभव्य है। इसी तरह आकाश द्रव्य, काल द्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य ये चारों द्रव्य अनादि से शुद्ध हैं इनकी पर्याय उसी रूप परिणत होती हैं अन्य रूप नहीं होती। जीव की पर्याय जीव रूप ही रहेगी वह पुद्गल रूप नहीं हो सकती, पुद्गल

की पर्याय पुद्गल रूप होगी वह कभी जीव नहीं बन सकता। परिणमन चलता रहता है।

संसार का परिणमन किसी के भी आधीन नहीं है। संसार में विद्यमान सभी द्रव्य स्वतंत्र हैं। वह स्वयं के चतुष्टय से अर्थात् स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव इनके माध्यम से परिणमन अवस्था को प्राप्त कर रहे हैं, अन्य प्रकार से नहीं। हम स्वयं के परिणमन को अच्छे बुरे निमित्तों से कुछ परिवर्तित कर सकते हैं। निमित्तों का प्रभाव हमारे परिणामों पर पड़ता है। परिणाम परिणमन है। जैसे कोई अच्छे व्यक्ति की संगति में है तो अच्छे परिणाम हो गये बुरे की में है तो बुरे परिणाम हो गये। जैसे कोई पदार्थ प्रकाश के सामने है तो वह प्रकाशमय हो गया चमक गया, उसी वस्तु को अंधकार में रख दो तो वही वस्तु अंधकार में श्याम दिखने लगेगी। किसी रूप की फोटो प्रकाश में खींची गयी तो सुंदर आयी, अंधकार में खींची गयी तो चेहरा श्याम आया। ये परिणमन संसार के द्रव्यों में चलता रहता है। इस परिणमन से अपने परिणाम कभी खराब मत करो। परिणाम खराब करने का परिणाम भी खराब हो जायेगा। इसीलिये अपने परिणाम (Result) को सुधारना चाहते हो तो अपने परिणामों (भाव) को सुधारना प्रारंभ करो।

परिणाम चाहे आपने किसी के भी निमित्त से बिगाड़ लिये, ये बात महत्त्वपूर्ण नहीं। बात महत्त्वपूर्ण यह है कि परिणाम खराब होने से तुम्हारा परिणाम (Result) खराब हो गया। जैसे कोई विद्यार्थी किसी कक्षा में अनुत्तीर्ण हो गया, इसका आशय यह नहीं कि नंबर कम किस कारण से आये, कारण कुछ भी रहा हो किंतु अनुत्तीर्ण तो अनुत्तीर्ण है। किसी परीक्षार्थी के अच्छे नंबर आये तो ये न सोचें उसके अच्छे नंबर क्यों आये, किससे पढ़ा था, कैसे पढ़ा था बात यह है कि नंबर अच्छे आये। जब निमित्तों को महत्त्व नहीं दिया जाता तब उपादान प्रबल हो जाता है। कभी उपादान की मुख्यता होती है कभी निमित्त की मुख्यता। जब निमित्त को लेकर बात करते हैं तो विद्यार्थी

कहेगा मेरे सर ने मुझे अच्छे से पढ़ाया था इसलिये अच्छे नंबर आ गये वह विद्यार्थी निमित्त को महत्त्व देता है। जिससे उसके मन में अहंकार नहीं आये। वही दूसरा व्यक्ति कहता है सर ने तो सभी को एक जैसा पढ़ाया था सभी के अच्छे नंबर क्यों नहीं हैं, उसकी स्वयं की योग्यता है। वह उपादान की प्रमुखता से कथन कर रहा है। उसका कथन भी सर्वथा मिथ्या नहीं है।

किंतु हमें अपना जीवन सुखी बनाना है, शांतमय बनाना है, अपने परिणाम सुधारना है तो उसका एक अच्छा सा उपाय है। हम हमेशा ये सोचें कि जो कुछ भी घटनायें संसार में घटित हो रही हैं वे सब ठीक हैं, मुझे उनसे संक्लेशता नहीं बनानी। जो हो रहा है सो अच्छा ही हो रहा है, उसे बुरा कहेंगे तो बुरा कहना भी बुरा है और बुरा कहते कहते परिणाम भी बुरा हो जाता है। क्योंकि बुरा कहने के लिये शब्द भी बुरे कहने पड़ते हैं। बुरे शब्द बहुत सारे हैं किन्तु 'बुरा' शब्द भी तो अपने आप में बुरा है। बुरा कहते-कहते शरीर की प्रवृत्ति और प्रकृति भी बुरी होने लगती है। बुरा शब्द कहने से मन का भाव भी बुरा होने लगता है। इसलिये कभी बुरा न कहो, न सोचो।

चाहे अतीत हो या वर्तमान, चाहे निकट में हो या दूर किन्तु कभी ये नहीं कहो कि यह बुरा हुआ। बुरा-बुरा कहने से हमारे अंदर नकारात्मक ऊर्जा का संचार होने लगता है। ये सोचो जो हुआ सो अच्छा हुआ। प्रत्येक रात्रि के बाद दिन आता ही आता है, प्रत्येक प्रतिकूलता के बाद अनुकूलता आती ही आती है। प्रत्येक कृष्ण पक्ष के बाद शुक्ल पक्ष आता ही आता है, सकारात्मक सोचकर चलो और ये सोचोगे कि जो हुआ सो अच्छा हुआ तब तुम्हें कोई दु:खी नहीं कर पायेगा।

एक बार किसी राजा के यहाँ कोई वजीर रहता था। वह हमेशा बोलता था 'जो हुआ सो अच्छा हुआ, विकल्प मत करो, संक्लेशता मत बनाओ। वजीर के बेटे का एक दुर्घटना में पैर कट गया। वजीर ने फिर भी यही कहा जो हुआ सो अच्छा हुआ। राजा ने

पूछा पैर कट गया इसमें क्या अच्छा हुआ? वजीर तो सकारात्मक सोच वाला था, उसने कहा महाराज दो पैर होते तो दोनों पैरों के लिये जूते चाहिये पड़ते अब एक से काम चल जायेगा। दूसरी बात राजन्! मैं नहीं जानता इसके पीछे क्या रहस्य छिपा है, प्रकृति का निर्णय क्या है। एक पैर कर दिया, इसका आशय यह है कि एक पैर में ही इतना बल आ जायेगा कि ये एक पैर से ही सारा काम कर लेगा, दो पैर होते तो शायद इतना बल प्राप्त नहीं हो पाता।

जो व्यक्ति अपना स्वयं का बल प्रकट कर सकता है प्रकृति उसे बल प्रकट करने का अवसर देती है। जो दूसरों के सहारे चलते हैं, प्रकृति उनसे उनके सहारे छीन लेती है। सहारा उनका ही छीना जाता है जो बेसहारा भी जिंदगी जी सकें, दूसरे के लिये सहारा बन सके। हर घटना के पीछे यही सोचते जाओ जो हुआ सो अच्छा हुआ।

रामचन्द्र जी का पहले राज्याभिषेक होना था किन्तु हो गया वनवास। लोगों ने कहा बड़ा बुरा हुआ किन्तु रामचंद्र जी ने कहा जो हुआ अच्छा हुआ मुझे वन में भ्रमण करने का अवसर प्राप्त हो गया अन्यथा राज-काज में फंस जाता तो वन में कैसे जाता। हो सकता है वन में जाकर कोई विशेष उपलब्धि हो। वास्तविकता भी यही है रामचन्द्र जी वन गये तो वास्तव में वे रामचन्द्र जी बन गये। वन में नहीं जाते तो इतनी प्रसिद्धि को प्राप्त नहीं होते। नौ बलभद्र में रामचंद्र जी ही अधिक प्रसिद्धि को प्राप्त हुये। वन गये तो रावण को जीता, प्रसिद्धि प्राप्त की, वन गये पिता की आज्ञा पालन करने का श्रेय प्राप्त किया, वन गये तो माता कैकयी का भी उनके प्रति दुराभाव नहीं आया।

वह राजा भी कई बार सोचता कि ये वजीर कितना अच्छा सोचता है। अचानक एक दिन राजा की अंगुली कट गयी। वजीर ने देखा, कहा महाराज जो हुआ सो अच्छा हुआ। राजा को तो बहुत कष्ट हो रहा था, खून भी बह रहा था, वजीर की बात सुनकर उसे क्रोध आया। आवेश में आकर राजा ने वजीर को कैदखाने में डलवा दिया।

एक दिन राजा वनभ्रमण के लिये जंगल में गया, इसके साथ और भी नये मंत्री आदि थे। राजा का घोड़ा आगे निकल गया और सभी मंत्री अंगरक्षक आदि पीछे रह गये। मात्र एक मंत्री राजा के साथ था, उसने कहा राजन्! हम दोनों यहाँ अकेले रह गये। उस मंत्री को वजीर की बात याद आ गयी बोला महाराज आप बुरा न मानें तो एक बात कहूँ आप यहाँ अकेले आ गये तो इसमें भी कोई भलाई है, अच्छा ही हुआ, राजा को यह सुनकर फिर क्रोध आया, जो मंत्री साथ में था उसे कुयें में धक्का दिया और स्वयं अकेला ही आगे चला गया।

राजा शाम तक रास्ता खोजता रहा किंतु रास्ता नहीं मिला सूर्य अस्त हो गया, रात्रि हो गयी। रात्रि में कोई भील नर बलि के लिये किसी मनुष्य को खोज रहे थे। उन्हें ज्ञान नहीं था कि हिंसा करना महापाप है। वे लोग रात्रि के घने अंधकार में राजा को पकड़ कर ले गये। राजा को जब सबके सामने उपस्थित किया, बलि देने का हुक्म दिया ज्यों ही इसके सिर पर तलवार रखने को हुये, त्यों ही उनके पुरोहित ने कहा देख लो इसका कोई अंगभंग तो नहीं है, तब तक एक पुजारी चिल्लाया बोला-ठहरो! भीलराज! इसका तो अंगभंग है अंगुली कटी है हमारी देवी इसकी बली से नाराज हो जायेगी छोड़ो इसे। भीलों के राजा ने उसे छोड़ दिया, वह राजा घोड़े पर सवार होकर सीधे अपने राजमहल आया। प्रात:काल सर्वप्रथम उसने अपने वजीर को बुलाया, जिसको कैदखाने में कैद किया था, उससे क्षमा मांगी, कहा-तुमने उस दिन ठीक कहा था, तुम्हारा कोई कसूर नहीं था मैंने अकारण ही तुम्हें बंदी बना डाला। तुमने सत्य ही तो कहा था-जो होता है वह अच्छा होता है। वजीर ने पूछा आखिर बात क्या है। राजा बोला यदि आज मेरी अंगुली कटी न होती तो मेरी बलि चढ़ गयी होती और सारा वृत्तांत कह सुनाया। उसने फिर कहा-महाराज जो होता है सो अच्छा होता है। राजा ने कहा क्यों तुम्हारे साथ क्या अच्छा हो गया वह बोला महाराज मैं क्या बताऊँ यदि मैं कैदखाने में नहीं होता तो नि:संदेह आपके साथ

वन विहार में जाता और मैं आपके साथ वहाँ पर भी होता, महाराज! आप तो अंगभंग होने के कारण बच गये किंतु मैं नहीं बचता मेरा सिर देवी को चढ़ा दिया जाता।

दूसरा मंत्री जो कुयें में गिरा था, उसे निकलवाकर बुलाया गया राजा ने उससे भी क्षमा मांगी। मंत्री ने कहा–क्षमा जैसी कोई बात नहीं, जो होता है सब अच्छे के लिये होता है। अब तुम्हारे लिये क्या अच्छा हुआ? महाराज! मेरे लिये तो अच्छा ही हुआ, जब वजीर आपके साथ नहीं थे तो मैंने सोच लिया था कि आपके साथ परछाई की तरह रहूँगा। किंतु न जाने मेरे मुँह से कैसे वह बात निकल गयी कि सारे साथी पीछे रह गये यह भी अच्छा ही है। आपको क्रोध आया आपने मुझे धक्का देकर कुयें में गिरा दिया। महाराज यदि अन्य प्रकार से आप मुझे दण्डित करते तो शायद मैं आपको छोड़कर नहीं लौटता कुयें में गिरा दिया मैं निकल नहीं पाया। साथ जाता तो आपकी बलि के स्थान पर मेरी बलि चढ़ जाती इसलिए महाराज! आपने जो किया वह अच्छा ही किया।

प्रकृति कभी किसी के साथ अन्याय नहीं करती। जो कुछ भी होता है अच्छे के लिये होता है। प्रत्येक घटना के साथ यही सोचो जो हुआ सो ठीक हुआ। महापुरुषों पर यदि उपसर्ग आये, उन्होंने यही सोचा जो हुआ अच्छा हुआ यदि इस प्रतिकूलता से नहीं निकलता, मैं अग्नि परीक्षा नहीं देता तो लोक प्रसिद्ध पुरुष नहीं बनता। मेरे पास ऐसी कोई उपलब्धि नहीं होती जिसके लिये संसार मेरा नाम स्मरण करे। किन्तु यह तभी हो सकता है जब व्यक्ति प्रतिकूलताओं की अग्नि से निकलता चला जाता है।

महानुभाव! नारायण श्रीकृष्ण ने युद्ध के समय अर्जुन को उपदेश दिया तो यही बताया–अर्जुन। तू क्यों चिंता करता है जो हुआ सो अच्छा हुआ, जो हो रहा है वो अच्छा हो रहा है, जो होगा सो अच्छा होगा। अर्जुन ने पूछा क्या हमारा जुआ खेलना भी अच्छा रहा? क्या द्रोपदी को दांव पर लगाना अच्छा रहा? क्या द्रोपदी का चीरहरण

अच्छा हुआ? क्या आज जो हम अपनों का खून बहाने को तत्पर हैं यह अच्छा है? नारायण श्री कृष्ण ने कहा-हाँ पार्थ। यह भी अच्छा हुआ यदि ये सब नहीं हुआ होता तो आज आप यहाँ तक नहीं होते। जुआ खेला-एक बुराई ने तुम पाँचों पाण्डवों को ऐसा सुधार दिया कि जीवन में दूसरी बुराई तुम्हारे अंदर आ नहीं पायेगी। द्रोपदी का चीर हरण नहीं होता तो वह भगवान की भक्ति नहीं करती, भक्ति न करती तो चीर वृद्धि को प्राप्त नहीं होता, चीर वृद्धि को प्राप्त नहीं होता तो भक्त की श्रद्धा भगवान के प्रति कैसे प्रकट होती। अच्छा हुआ कौरवों ने राज्य नहीं दिया वरना आप युद्ध के लिये क्यों आते। तुम्हें धर्म की रक्षा का भाव आया यह मोह का युद्ध नहीं है यह धर्म की रक्षा का युद्ध है। यह युद्ध भविष्य में लोगों के लिये प्रेरक निमित्त बनेगा कि धर्म रक्षा के लिये तो अपनों के साथ भी युद्ध किया जा सकता है।

धर्म रक्षा के लिये ही तो विभीषण रावण का पक्ष छोड़कर राम के पास चला गया। आज तुम यहाँ खड़े हो, यदि तुम यहाँ नहीं होते तो गीता का उपदेश तुम्हें सुनने के लिये कैसे मिलता। इसलिये सत्य यह है कि आज तुम इस अग्नि से निकलकर चले जाओगे तो जीवन में उस उपलब्धि को प्राप्त कर लोगे जिसे कोई छीन नहीं सकता। नि:संदेह तुम मोक्ष अवस्था को प्राप्त करोगे, संसार की जन्म-मरण अवस्था से मुक्त हो जाओगे।

महानुभाव! किसी भी बात को देखो, हर बात के दो पहलु होते हैं-व्यक्ति सोचता है ये मेरे साथ क्यों हो गया सोचते ही नकारात्मकता प्रवेश कर जाती है वह गिरता चला जाता है। जो सोचता है ठीक हुआ वह मेरे लायक नहीं था मैं नहीं जानता अतीत को, मैं नहीं जानता दीर्घकालीन भविष्य को, मैं जानता हूँ वर्तमान को, इसे भी पूरा नहीं जानता इसका फल अच्छा होगा या बुरा। किंतु मैं इतना अवश्य जानता हूँ प्रकृति मेरे साथ अन्याय नहीं करती। हमेशा जो प्रश्नपत्र आता है, वह जिस कक्षा का होता है उसी विद्यार्थी के पास

आता है। प्रकृति इस पुरुष की उतनी ही परीक्षा लेती है जितनी परीक्षा में वह पास होने के काबिल होता है।

महानुभाव! इसलिये जीवन में एक सोच बनाओ, हमारे जीवन में जो भी घटना घटित हो रही है वह प्रत्येक प्रतिकूल घटना तुम्हें अनुकूलता देकर जाती है, प्रत्येक प्रतिकूलता में कोई अच्छी उपलब्धि होती है, प्रत्येक संघर्ष हर्षमय अंत को देने वाला होता है। काँटों के साथ फूल खिलते हैं। काँटे न हों तो फूलों की रक्षा नहीं हो सकती। इसलिये जीवन का सबसे अच्छा सूत्र यही है ''जो कुछ हुआ अच्छा हुआ'', भूल जाओ उससे ले सको तो शिक्षा ले लो, जो हो रहा है अच्छा हो रहा है, कोई विकल्प मत करो, और जो होगा अच्छा होगा भविष्य के लिये अभी से दुश्चिंतायें अपने मस्तिष्क में न रखो। यही आत्मशांति का मार्ग है आप इन सभी बातों को अमल करेंगे, मुझे विश्वास है कि आप भी सुख शांति का अनुभव करेंगे। इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान की जय।।

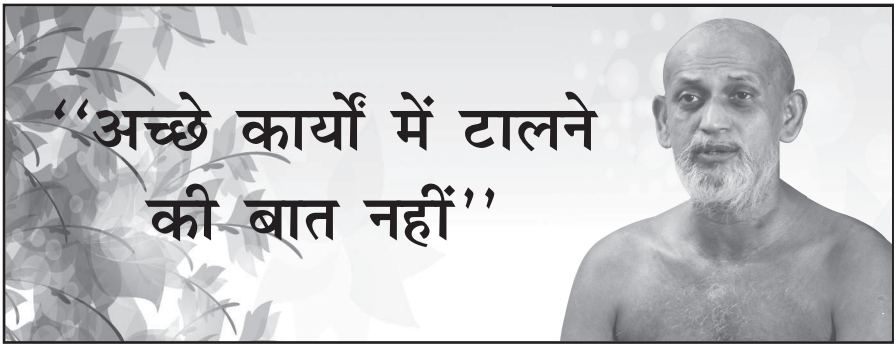

''अच्छे कार्यों में टालने की बात नहीं''

महानुभाव! जीवन हमारा या आपका बहुत महत्त्वपूर्ण है, इस महत्त्वपूर्ण जीवन को सफल और सार्थक बनाने के लिये आवश्यक है अच्छे कार्यों का संपादन, अच्छे वचनों का व्यवहार और अच्छे विचारों का पुनः पुनः चिंतन। संसार में ऐसे बहुत से प्राणी हैं जो इन बातों को जानते हैं। वे जानते हैं हमें अपने धन का सदुपयोग करना चाहिये, शरीर से अच्छी प्रवृत्ति करनी चाहिये, अच्छे वचन बोलने चाहिये, अच्छे विचार मन में उत्पन्न करना चाहिये और उन विचारों को साकार रूप भी देना चाहिये किन्तु वे ऐसा कर नहीं पाते। कुछ विरले व्यक्ति ही ऐसे होते हैं जो प्रायःकर अच्छे विचार मन में रखें, जब भी उनके श्री मुख से निकलें अच्छे शब्द ही निकलें, जो शरीर से अच्छी क्रिया ही करें जिनके धन साधन सामग्री का सदुपयोग पुण्य अर्जन के लिये हो।

ऐसा क्या कारण है कि व्यक्ति अच्छे कार्यों को टालने की कोशिश करता है? क्या कारण है कि व्यक्ति चाहते हुये भी बुरे कार्यों से बच नहीं पाता? ऐसा क्या कारण है कि व्यक्ति के मस्तिष्क में बुरे विचार एक बार आते ही अपना स्थान जमा लेते हैं और अच्छे विचार जो आते हैं वे ज्यादा समय तक ठहर नहीं पाते, अच्छे विचार तो कपूर की गंध की तरह क्षण भर में (अन्तर्मुहूर्त) उड़ जाते हैं। अच्छे विचारों के पक्षी मस्तिष्क में क्यों नहीं ठहर पाते? बुरे विचार ऐसा लगता है फेविकोल के जोड़ की तरह से वहाँ पर स्थायी हो गये हों। हम बार-बार कोशिश करते हैं पर बुरे विचार निकलते नहीं, अच्छे विचारों को लाने की कोशिश करते हैं, वे ठहरते नहीं।

हम कई बार प्रयास करते हैं अपने श्री मुख से अच्छे वचन ही बोलेंगे, किन्तु इसके बावजूद भी जब हमें क्रोध आता है, हम अहंकार से भरे होते हैं, जब हम गैर कानूनी रूप से दूसरों की वस्तु ग्रहण करना चाहते हैं या जब लोभ की अग्नि जल रही होती है या हास और परिहास के माहौल में होते हैं या कभी दु:खी व शोकाकुल होते हैं या भयान्वित होते हैं तब हमारे श्रीमुख से सहज शब्द क्यों नहीं निकलते? फिर संस्कारवशात् वही शब्द जिन्हें हम बोलना नहीं चाहते वही क्यों निकलते हैं? क्रोध के आवेग में जैसे अग्नि के गोले ही निकल रहे हों, अहंकार के आवेश में परुष, निंद्य व कठोर वचन निकलते हैं, लोभ के कारण मिथ्या भाषण होता है, हास-परिहास में दूसरों के प्रति अपमानजनक शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है। शरीर से चाहते हैं क्रियायें अच्छी-अच्छी हों फिर भी या तो शरीर से अच्छी चेष्टा कर नहीं पाते या अच्छे कार्यों को ज्यादा समय तक कर नहीं पाते। इस संबंध में विचार करने पर कुछ बातें महत्त्वपूर्ण हैं जिनके कारण हम अच्छे विचारों को अपने मस्तिष्क में स्थान नहीं दे पाते हैं, अच्छे वचनों को अपने श्रीमुख से बार-बार नहीं कह पाते हैं, अच्छे कार्यों का संपादन अपने शरीर से नहीं कर पाते, हम धन साधन सामग्री और उपकरणों का समयानुसार और स्थान के अनुसार सम्यक् उपयोग नहीं कर पाते।

महानुभाव! इसमें सबसे पहला कारण है-**'पूर्व संस्कारवशात्'** यदि हमारे जीवन में पुनः पुनः अशुभ विचार आ रहे हैं तो समझो पूर्व संस्कारवशात्। अशुभ वचनों का बार-बार निकलना, पुनः-पुनः उन्हीं मिथ्या, पाप रूपी क्रिया को करना, धन-साधन सामग्री का उपयोग सद् न करके असद् में लगा रहे हैं यह सब पूर्व संस्कारवशात् ही हो रहा है। जैसे किसी बर्तन में पहले छांछ रखी थी, अब छांछ निकालकर उस बर्तन में शुद्ध दूध भी भर दो तो वह दूध छांछ के संस्कारों को पाकर दही बन जाता है। पूर्व संस्कारवशात् अच्छी क्रिया भी बुरी हो

जाती है। जैसे कुम्हार बर्तन बनाते समय चाक को डंडे से घुमाता है और घुमाकर के डंडे को निकालकर अलग कर देता है, किन्तु वह चक्र फिर भी घूमता ही रहता है। क्यों? पूर्व संस्कारवशात्। हम पाप को बार-बार कर रहे हैं क्यों? पूर्व संस्कारवशात्। हमारे चित्त में विशुद्धि ठहर नहीं पाती, अशुद्धि स्थान बना लेती है क्यों? पूर्व संस्कारवशात्। सबसे पहला कारण यही है जिसकी वजह से हम अच्छे कार्यों को टाल देते हैं, अच्छे विचारों को निकाल देते हैं।

जिस व्यक्ति की बैठक में पूर्वकाल से उन व्यक्तियों की बैठक चलती रही है जो व्यक्ति अशिष्ट हैं, अशुभ विचार से युक्त हैं, जिनका खानपान अशुद्ध है ऐसे लोग जहाँ बैठे हों वहाँ सज्जनों को बिठाने का प्रयास भी करेंगे तो वे वहाँ की वर्गणाओं को देखकर के चले जायेंगे। और पूर्वसंस्कारवशात् वे असभ्य लोग वहाँ आते और ठहरते हैं। ऐसे ही हमारे चित्त में पूर्व संस्कारवशात् पुरानी बातें बार-बार आती रहती हैं, पूर्व संस्कारवशात् हमारे मुख से वही अशुभ शब्द निकलने लगते हैं हम पुनः-पुनः उन्हीं पाप की क्रियाओं को करने लगते हैं जिन पाप की क्रियाओं से बचना चाहते हैं।

दूसरा कारण है **द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अनुकूलता न होना।** हमें वैसा माहौल ही नहीं मिलता। जैसे कोई व्यक्ति विद्वानों की सभा में बैठने लग जाये तो वह भी एक दो बातें विद्वत्ता की करने लगता है, साधुओं के बीच बैठा, आँख बंद करके एक सामान्य व्यक्ति भी साधक जैसा प्रतीत होता है। सूर्य के प्रकाश में पड़ा हुआ काँच का टुकड़ा भी रत्नों की संगति में रत्नों जैसा चमकने लगता है। तो ऐसा माहौल बन जाये तो व्यक्ति बुरे कार्यों को छोड़ सकता है।

यदि उसे द्रव्य भी प्रतिकूल मिल रहा है, उसका क्षेत्र भी प्रतिकूल है, उसका समय भी प्रतिकूल है, अब भाव भी उसके प्रतिकूल हो जाते हैं। जैसे कोई व्यक्ति रात्रि के समय शराब पीता था

वह व्यक्ति शराब को छोड़ना चाहता है किंतु पूर्व संस्कारवशात् जहाँ पहले शराब पीता था, वहाँ पर पहुँच गया। वही समय, वही स्थान, वही शराब की बोतल सामने रखी हो तो उसका मन पुनः-पुनः शराब पीने का करेगा। पूर्व संस्कारवशात् वह संस्कार जाते नहीं हैं। अच्छे संस्कार ठहर नहीं पाते। जैसे बबूल किसी खेत में उगे हों, उससे भूमि बंजर हो गयी हो, अब झाड़-झंकर भी उसमें लगे हैं कोई व्यक्ति उन्हें उखाड़ करके यदि वहाँ पर गुलाब के पौधे लगाना चाहे तो पूर्व संस्कारवशात् उसमें बीच-बीच में बबूल के पेड़ पैदा हो जाते हैं गुलाब वहाँ अपना स्थान जमा नहीं पाते हैं। ऐसे ही पूर्व संस्कारवशात् और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अनुकूलता नहीं मिलने पर हमारी पुनः-पुनः वही क्रिया होने लगती है।

तीसरा मुख्य कारण है **कुसंगति।** हम अच्छे कार्यों को क्यों टाल देते हैं क्योंकि कुसंगति का हमारे जीवन पर ऐसा प्रभाव पड़ता है, जिसके कारण अच्छे कार्यों को करने का साहस हम कर ही नहीं पाते। कुसंगति हमें अपने रंग में रंग देती है जैसे श्याम रंग ने धवल वस्त्र को भी श्याम कर दिया हो अब उसे कोई धवल करना भी चाहे तो पुनः-पुनः वह यदि कोयले के बीच में पड़ा हुआ श्वेत वस्त्र भी है तो वह कोयले की हवा से उड़कर श्याम हो जायेगा। कुसंगति व्यक्ति के धन, मान, पद, प्रतिष्ठा यहाँ तक कि जीवन को भी नष्ट करने में समर्थ होती है।

नाहं काको महाराज! हंसोऽहं विमले जले।
नीच संग प्रसंगेन मृत्युरेव न संशयः॥

मैं काक नहीं निर्मल जल में रहने वाला हंस हूँ, नीच जन की संगति से यह दुर्दशा हुई है, अब मृत्यु ही शरण है, इसमें कोई संशय नहीं है।

एक बार एक हंस की संगति कौए से हो गई। दोनों एक वृक्ष

पर बैठे थे। उसी वृक्ष की छाया में एक पथिक शयन कर रहा था। उस पथिक पर धूप पड़ रही थी अतः हंस ने अपना पंख फैला लिया जिससे पथिक पर धूप न पड़े। हंस का ऐसा करना कौए को अच्छा नहीं लगा, अतः कौए ने पथिक के ऊपर बीट कर दी। पथिक की आँख खुली और हंस को पंख फैलाए हुए देख, समझ गया यही बीट कर्ता है। अतः तीर के प्रहार से हंस का जीवन समाप्त कर दिया। अतः कभी भी दुष्ट जनों की संगति नहीं करना चाहिये।

कुसंगति को छोड़े बिना कोई भी व्यक्ति बुरी आदतों को छोड़ नहीं सकता। उसके मित्र वही हैं तो आदतें छूट नहीं पायेंगी। या तो संगति छोड़ दे तो वस्तु छूट सकती है अन्यथा वस्तु छोड़ने मात्र से, संगति को छोड़े बिना तो वस्तु छूट नहीं पाती वरन् पुनः-पुनः उन्हीं कार्यों को करता है वहाँ आकर्षित होता है।

अच्छे कार्य किये जा सकते हैं अच्छी संगति में जाकर, जैसा माहौल होता है, जैसे निमित्त होते हैं वैसे कार्य करने के परिणाम होते हैं, वैसे ही साधन मिलते हैं।

अगला कारण है जो अच्छे कार्यों को टाल देता है **'प्रमाद'**। व्यक्ति अपने उत्साह को छोड़कर कार्यों को प्रमाद वश टाल देता है। यह उत्साह आता है पुण्य के उदय से। जब तक पाप का उदय होता है तो कुसंस्कार जोर मारते हैं उसे प्रमादी बना देते हैं। अच्छे कार्य करने के नाम पर उसे नींद आने लगती है। विद्यार्थी से पढ़ाई की कहो तो उसके सिर-पैर के सारे दर्द शुरु हो जाते हैं जब मन में प्रमाद भरा हो तब। यदि किसी दूसरे कार्य की कह दो तो सभी दर्द छू मंतर हो जाते हैं। अंदर का प्रमाद अच्छे कार्यों को करने से रोकता है और बुरे कार्यों में सहजप्रवृत्त हो जाता है।

अच्छे कार्यों को करने का आशय है किसी जल को ऊपर ले जाना, बुरे कार्य का आशय है जल का नीचे की ओर बहकर आना।

जल नीचे स्वभावतः संस्कारवशात् बहकर आ जाता है किंतु ऊपर ले जाने के लिये पुरुषार्थ करना पड़ता है। मन-वचन-काय पर नियंत्रण करना पड़ता है।

अगला कारण है **'आत्मविश्वास की कमी'**। अच्छा कार्य करने की सोच ही उसे हैरत में डाल देती है कि मुझसे अच्छा कार्य हो पायेगा या नहीं। यदि मैंने प्रारंभ कर दिया और पूरा नहीं हो पाया तो लोग मेरी हंसी करेंगे। लोगों ने उलाहना देना शुरु कर दिया कि बडे बडे तो आज तक कर नहीं पाये, तू छोटा सा इतने बड़े कार्य को करने चला है। ऐसा सोच-सोच कर उसका आत्मविश्वास डगमगाने लगता है जिसका आत्मविश्वास कमजोर होता है वह अच्छे कार्य का प्रारंभ पहली बात तो करता ही नहीं है करता भी है तो सामने वाली प्रतिकूलताओं को देखकर दो कदम बढ़ाते ही पीछे लौट आता है। कई बार कार्य के मध्य में से और कई बार उस कार्य की पूर्ण सफलता के समीप तक पहुँचकर भी लौट आता है। जैसे कोई तैराक तैरकर के नदी पार कर रहा हो तो कच्चे दिल वाला तो नदी में कूदता ही नहीं भले ही तैरना जानता हो, वह सोचता है यदि मैं दूसरे किनारे तक नहीं पहुँच पाया तो, यदि डूब गया तो। और किसी ने हिम्मत कर भी ली तो कई बार व्यक्ति किनारे तक पहुँच कर भी डूब जाता है। कारण यही रहता है आत्मविश्वास की कमी। यह कमी व्यक्ति को आगे नहीं बढ़ने देती। प्रबल आत्मविश्वासी संकल्प के साथ आगे बढ़ता है उसे कभी कोई प्रतिकूलता रोक नहीं पाती। वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये किसी भी मुसीबत से समझौता नहीं करता। वह जानता है सफलता मेरी मुट्ठी में है मुझे मेरी मंजिल मिलेगी ही मिलेगी। वह आत्मविश्वास के जोश से भरा राही किसी की परवाह नहीं करता।

''हौसला बना लिया जब ऊँची उड़ान का।
फिजूल है फिर कद नापना आसमान का।।

जब संकल्प कर लिया, आत्मविश्वास जगा लिया तब तो वैसा होगा ही। फिर क्या डरना रास्ते पर चलते रहना है, न रुकना है, न मुड़ना है बस पहुँचना है। यह भी तय है कि किसी व्यक्ति को प्रमाण पत्र ऐसे ही नहीं मिलता पहले परीक्षा देनी पडती है और ये भी तय है कि अच्छे कार्यों में तो विघ्न आते ही आते हैं। **''श्रेयांसि बहु विघ्नानि''** किंतु वह परवाह नहीं करता। आत्मविश्वासी ही बढ़ते-बढ़ते अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में समर्थ हो पाता है।

अगला कारण है जिससे वह अच्छे कार्यों को टालने की कोशिश करता है वह है, **कार्य की सफलता में संदेह**'। जब व्यक्ति को संदेह होता है, उससे कोई व्यक्ति आकर के कह दे कि तुम इस कार्य को करने जा रहे हो मैं तुम्हें लिखकर दे सकता हूँ कि तुम यह कार्य कर ही न पाओगे। वह उसकी बातों में आ जाता है और आगे कदम नहीं बढ़ा पाता। यदि उसके स्थान पर कोई व्यक्ति ये कह दे कि तुम्हारा कार्य तो नियम से पूरा होगा ही होगा तो वह कार्य को टालेगा नहीं कार्य को करेगा ही करेगा। संदेहात्मक संदेश, सुझाव, विचार जब होते हैं तब व्यक्ति के पैर कांपने लगते हैं, जो व्यक्ति चलने में, दौड़ने में समर्थ हो सकता है वह भी कांपने लगता है। किन्तु जब व्यक्ति संकल्प के साथ बढ़ता है,इस विश्वास के साथ कि 100% इस कार्य में सफलता प्राप्त करूँगा तब व्यक्ति साहस से भर जाता है फिर सफलता में संदेह नहीं रहता।

एक राजा के पास दूसरे राजा का दूत पत्र लेकर आया। पत्र में लिखा था या तो युद्ध के लिये तैयार हो जाओ या मेरी आधीनता स्वीकार कर लो। राजा की प्रजा एवं सेना आधीनता स्वीकारने को तैयार ही न थी हम युद्ध ही करेंगे। किंतु समस्या यह थी कि इस राजा की सेना बहुत थोड़ी थी और शुत्र राजा की सेना बहुत बड़ी थी। राजा ने सोचा कि मेरा एक बचपन का साथी है जो पहाड़ की चोटी पर रहता है, वह राजकुमार है पर सन्यासी जैसा जीवन जीता है, वह

आज भी सभी कार्यों में निपुण है, उस मित्र से मिलकर ही हम युद्ध करने जायेंगे। सभी राजा के साथ पहाड़ की चोटी पर स्थित मंदिर पहुँचे। वहाँ उसका मित्र सन्यासी के वेष में रहता था, राजा ने पूछा मित्र! सामने वाले राजा ने मुझे चुनौती दी है आधीनता स्वीकारो या युद्ध करो बताओ हम क्या करें? मित्र ने कहा करना क्या है, युद्ध में पहुँचो तुम्हारी जीत सुनिश्चित है। फिर भी एक बार मेरे भगवान से पूछ लेते हैं कि जीत निश्चित है या संदिग्ध, पूछा-कैसे? मित्र ने कहा भगवान् के आगे एक सिक्का उछालते हैं सिक्का चित्त गिरा तो जीत होगी पट गिरा तो जीत संदिग्ध है।

सबके सामने सन्यासी मित्र ने सिक्का उछाला, सिक्का गिरा, सबने देखा सिक्का चित्त पड़ा था, सभी ने जान लिया जीत सुनिश्चित है। पुनः उन्होंने उत्साह के साथ युद्ध किया और विजय प्राप्त की। सभी लौटकर आये। राजा ने सभा में कहा हम तो साहस खो बैठे थे, मित्र ने ही संबल दिया, मित्र को कृतज्ञता ज्ञापित करनी चाहिये। वह राजा वहीं पुनः पहाड़ की चोटी पर पहुँचा-मित्र से मिला-शुक्रिया किया और कहा अरे भगवान् ने कह दिया था कि जीत सुनिश्चित है इसलिये हम उत्साह से लड़े। उस राजा की सेना हमसे 90% ज्यादा थी तब भी हम जीतकर आ गये। सन्यासी मित्र बोला मित्र! जीत तो तुम्हारी सुनिश्चित थी ही, बोले क्यों? क्योंकि तुम्हारी सेना में उत्साह था। राजा बोला वह तो ठीक है पर सिक्के ने भी बता दिया था कि जीत सुनिश्चित है। सिक्का यदि चित्त न पड़ता तो? सन्यासी ने कहा ऐसा तो कभी हो ही नहीं सकता, मेरा सिक्का तो कभी पट पड़ता ही नहीं। पूछा क्यों? ऐसा क्या कारण है? सन्यासी ने अपने जेब से सिक्का निकाला बताया मेरा सिक्का दोनों तरफ से चित ही है। कैसे भी गिरेगा चित ही गिरेगा। राजा ने कहा तुम ऐसा क्यों करते हो? वह बोला मैं ऐसा इसलिये करता हूँ जिससे सामने वाला व्यक्ति हताश नहीं हो, मैं उसका उत्साहवर्धन करता हूँ। भगवान ने कह दिया जीत निश्चित है

तब उसकी आत्मा में विश्वास जाग जाता है। वहाँ संदेह का स्थान नहीं रहता और जब संदेह नहीं होता तो वह सफलता को प्राप्त करके ही रहता है।

महानुभाव! आप भी अच्छी सोच के साथ कि हमें सफलता मिलेगी ही मिलेगी यह सोचकर अच्छा कार्य करो। अच्छे कार्य का फल अच्छा ही होता है, इसमें कहीं संदेह नहीं है। हो सकता है अभीष्ट फल की प्राप्ति न भी हो पाये किन्तु जो फल तुम्हें मिल रहा है वही तुम्हारे लिये अभीष्ट है ऐसा मन में सोचना चाहिये। आप अच्छे कार्य करें, यह जिंदगी अच्छे कार्य करने के लिये मिली है, बुरे कार्य तो अनादि से भवों-भवों में किये। बुरा चिंतन, बुरे वचन, बुरे कार्य छोड़ें। अब अच्छे विचारों के साथ, वचनों के साथ व कार्यों के साथ अपना जीवन व्यतीत करें तभी हमारा जीवन सफल व सार्थक हो सकता है इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान की जय।।

व्यवहारिक जीवन

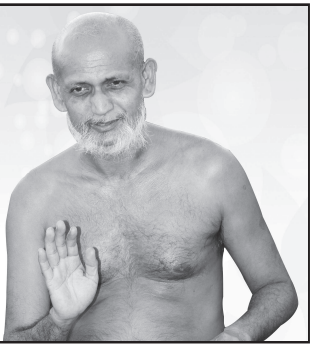

महानुभाव! जीवन जिस किसी प्राणी को मिला है, वह अपने जीवन को अपने अनुसार ही जीता है। कथंचित् यह बात ठीक भी हो सकती है कि हमारा जीवन, हमारा जीवन है न उधार का है, न किराये का है, ना मांगे का है, न भेंट का है, न वसीयत का है, न किसी से छीना है, न दबाव से लिया है। हमारा जीवन हमारा है हम जैसे चाहे वैसे जीयें। यह बात एक पक्षीय है। द्वितीय पक्ष ये है हमारा जीवन हम जीयें किंतु ऐसे जियें जिस जीवन के जीने से सामने वाले को प्रतिकूलता न हो। भगवान् महावीर स्वामी ने सम्पूर्ण धर्म का सार इस वाक्य में कह दिया 'जीयो और जीने दो'। आप स्वयं जीयो किंतु दूसरे के जीवन में व्यवधान बनकर नहीं। आप स्वतंत्रता से आनंद से जीयो किंतु आपकी स्वतंत्रता व आनंद से किसी को कष्ट नहीं हो। यदि तुम्हारा जीना दूसरे के लिये अभिशाप हो रहा है तो वह जीना सार्थक नहीं है।

जीवन ऐसा जीना है जिससे सामने वाला भी जीवन जीने की कला सीख जाये। अच्छा व्यवहार हमारे जीवन को सफल और सार्थक करने वाला है। हमारा बुरा व्यवहार हमारे लिये तो अभिशाप है ही, सामने वाले के वरदान को भी अभिशाप बनाने वाला है।

न कश्चित् कस्य चिन्मित्रं न कश्चित् कस्यचित् रिपुः।
व्यवहारेण मित्राणि जायते रिपवस्तथा॥

संसार में जीव का न कोई शत्रु है न कोई मित्र है, व्यवहार से शत्रु-मित्र पैदा हो जाते हैं।

हमार अच्छा व्यवहार हमारे मित्रों की व बुरा व्यवहार शत्रुओं की वृद्धि करने वाला होता है।

आप ऐसा जीवन जीयें जिस जीवन के जीने से आप यह महसूस करें कि मुझे मेरे जीवन का सार मिल गया। और सामने वाला व्यक्ति जो आपके सम्पर्क में है वह भी यह सोचे कि इनके साथ बिताये मेरे चार पल भी मेरी जिंदगी को सफल और सार्थक कर गये।

ऐसा जीवन कैसे जीयें? उस जीवन की क्या विशेषतायें हैं ऐसा क्या करना चाहिये उस जीवन के लिये? ये छोटी-छोटी बातें आपके जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण बातें हो सकती हैं। इन छोटी-छोटी बातों में जीवन का सार भरा होता है। कई बार ऐसा होता है छोटी-छोटी बातों से व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को निखार भी सकता है और बिगाड़ भी सकता है। ध्यान रखना बड़ी-बड़ी घटनायें जीवन में बहुत नहीं होती, वह तो कभी-कभी होती हैं पूरे जीवन में दो-चार होती हैं। किंतु छोटी-छोटी घटनायें हमारे जीवन में हजारों, लाखों, करोड़ों होती हैं। इन छोटी-छोटी बातों से हमारा चित्त क्षुभित भी हो सकता है और शांत भी। उन छोटी-छोटी बातों से दूसरों का दिल दु:ख भी सकता है और प्रसन्न भी। ऐसे कौन से कार्य हैं जिनसे हमारा मन भी शांत रहे और सामने वाले को भी अच्छा लगे।

सर्वप्रथम उपाय है हम जब भी कोई बात कहें उस बात में **'मैं'** शब्द का प्रयोग न करें। आप घर में, परिवार के बीच में, कार्यालय में, दुकान में, संस्था में, किसी समूह में जहाँ कहीं भी रहें ये न कहें कि मैंने ऐसा किया। यह 'मैं' शब्द तुम्हें दूसरों से तोड़ने वाला है, अहंकार का पोषक है। इसलिये मैं शब्द का प्रयोग कम से कम करने की कोशिश करो। जो कार्य आपने स्वयं किया है, जिस अच्छे कार्य को देखकर लोग जयघोष कर रहे हैं, सभी प्रशंसा कर रहे हैं उस कार्य का श्रेय आप अपने आप को न दो। वरन् ये कहो कि ये कार्य हम

सबने मिलकर किया है। इस प्रकार कहने से तुम्हारे सहयोगी बढेंगे। इस प्रकार कहने से तुम्हारे मित्रों की संख्या में वृद्धि होगी और सदैव तुम्हारे सहयोगी तुम्हारी किसी भी सहायता के लिये तत्पर रहेंगे। पहली बात यही है कि **'मैं' के स्थान पर 'हम' का प्रयोग करें।** अच्छे कार्य करें, सामने वाला नहीं भी सहयोग कर रहा है तब भी उससे यह कहो हम सभी ने मिलके काम किया है। इससे आपका यूथ कभी भी आपको छोड़ेगा नहीं। सदा आपका साथ देगा।

यदि 'मैं' शब्द का प्रयोग करना ही है तो करो किन्तु कब? जिस समय आपके किसी साथी से, किसी सदस्य से, किसी मित्र से या किसी से भी कोई गलती होती है तो उसे ये न कहो कि गलती इसने की, अपितु ये कहो कि इस गलती को मैं स्वीकार करता हूँ, हो सकता है मेरे कारण ही यह गलती हो गयी। यदि मैं अप्रमादी होता तो इसे पहले समझा देता, सिखा देता इससे गलती भूल से हो गयी, मूल में गलती तो शायद मेरा ही प्रमाद हो सकता है। ऐसा कहने से सामने वाला व्यक्ति तुम्हारे प्रति समर्पित रहेगा। वह सोचेगा ये व्यक्ति मेरी गलती को भी अपनी गलती मान रहा है, इससे भला व्यक्ति दुनिया में और कौन हो सकता है। यह व्यवहारिक जीवन तुम्हें और लोकप्रिय बनाने में कारण बनेगा।

अगला उपाय है-**'तू'** शब्द का प्रयोग न करें तो ही अच्छा है। क्योंकि तू शब्द एक खड़ी भाषा है जो सामने वाले को चुभती है। 'तू' शब्द अति प्यार का प्रतीक भले ही किसी के द्वारा माना जाता हो किंतु तू शब्द में सम्मान की भाषा नहीं होती। इसलिये मकारी-तकारी भाषा शिष्ट-सभ्य-सज्जन व्यक्तियों के द्वारा नहीं बोली जाती है। **तू के स्थान पर 'आप' शब्द का प्रयोग करें** 'आप' शब्द का प्रयोग करेंगे तो सामने वाला आपसे करीबी बनायेगा। 'आप' शब्द को कहने की आदत डालें। चाहें घर में हों या ऑफिस में, किसी संस्था में हों या समाज में। आप शब्द कहने से आपका व्यक्तित्व और निखर कर सामने आता चला जायेगा।

आप कहीं भी बैठे हों, जब भी अपनी बात को प्रारंभ कर रहे हों और आप चाहते हों कि सभी आपकी बात को ध्यान से सुनें, आप चाहते हैं कि आप लोकप्रिय बनें, सम्मानीय बनें, उसका सबसे अच्छा उपाय यही है कि जिस व्यक्ति से चर्चा कर रहे हो उससे बात का प्रारंभ उस व्यक्ति की प्रशंसा से करें। जैसे-आपने बीते दिनों से बड़े अच्छे कार्य किये या आपकी कार्यशैली बहुत अलग है, आपके पास आकर मुझे Positive Energy मिलती है या आपका खिलता चेहरा किसे अपनी ओर आकर्षित नहीं करता आदि शब्द कहते हुये बात प्रारंभ करोगे तो सामने वाला व्यक्ति आपकी प्रशंसा में दो शब्द कह भी सकता है या न भी कहे किंतु वह अब पत्थर की तरह से अकड़ कर नहीं रहेगा, मिट्टी के डेले की तरह वह व्यक्ति तुम्हारे प्रशंसा के शब्दों से फूल जायेगा, ऋजु हो जायेगा। आपकी बात को ध्यान से सुनेगा इतना ही नहीं तुम्हारे गुणों की भी प्रशंसा करेगा।

अगली बात अपने व्यक्तित्व को अच्छा बनाने के लिये ध्यान रखें-जो व्यक्ति आपके जीवन में आपके लिये बहुत महत्वपूर्ण है, जिन व्यक्तियों के बिना आपका जीवन समुन्नत नहीं हो सकता उन व्यक्तियों के प्रतिकूल व्यवहार को भी समता से सहन करने की शक्ति प्रकट करो। आप कभी छोटी-छोटी बातों पर रूठें नहीं, क्रुद्ध न होयें, न ही कभी जवाब दें। जो व्यक्ति वास्तव में आपके लिये उत्थान की भावना भाते हैं, आपको ऊँचा उठाना चाहते हैं उन व्यक्तियों के प्रतिकूल व्यवहार को आप अपने उत्थान की सीढ़ी मानें। सहनशील बनें, गलती हो गयी आगे सुधार कर चलूँगा ऐसा कहकर बात वहीं छोड़ दें। यदि कड़वे शब्द सुनने भी पड़ जायें तो कभी उनका प्रतिउत्तर न दें यदि कहना भी हो तो विनयपूर्वक सकारात्मक तरीकें से बोलें, इससे आपका व्यक्तित्व निखर कर आयेगा।

अगली बात सदैव दूसरों का उपकार व सहयोग की भावना रखें। कोई भी व्यक्ति जिसे आप नहीं भी जानते हैं तब भी अच्छी

भावना रखें, सभी के प्रति हित की भावना भायें क्रिया करें या न करें किंतु भावना अच्छी भायें। तुम्हारी अच्छी भावना का फल तुम्हें अच्छा ही मिलेगा। तुम्हें तुम्हारे ही पुण्य का फल पुण्य रूप और पाप का फल पाप रूप मिलेगा, किसी अन्य का नहीं इसलिये अच्छा कार्य करो दावे के साथ कहता हूँ अच्छे का फल अच्छा बुरे का फल बुरा होता है। खेत में गेहूँ बोने पर सरसों की फसल नहीं आती। किसी को विपरीत मिला भी है तो वह फल आज के कर्म का नहीं पूर्व के कर्म का फल मिला होगा। आज तो तुम अच्छा ही करो, अच्छा ही बोलो।

महानुभाव! इसके साथ-साथ जीवन में एक बात और ध्यान रखें सदैव अपने कर्त्तव्यों का पालन करने के लिये जागरुक रहो। कभी भी अपने कर्त्तव्य पालन से जी मत चुराओ। जिस पद पर आप विराजमान हैं उस योग्य क्या-क्या कार्य हैं उन कार्यों व कर्त्तव्यों का आदर्शरूप से पालन करो।

कर्त्तव्य, जीवनरूपी मानसरोवर का हंस है। इसके अभाव में जीवन विवेक भ्रष्ट हो जाता है। कर्त्तव्य मानव जीवन का अमृत है। कर्त्तव्य पालक को पार्थिव शरीर के नष्ट हो जाने पर भी अमर बना देता है। कर्त्तव्य का ज्ञान प्रत्येक मनुष्य को होना ही चाहिये। अरे! इतिहास के पन्नों में कुछ पशु-पक्षी भी अपने कर्त्तव्य-पालन में शहीद होकर अमर हो गये। इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं-महाराणा प्रताप का घोड़ा चेतक जो अपने स्वामी के प्रति कर्त्तव्य पालन करते-करते मर कर अमर हो गया। जटायु पक्षी ने कर्तव्य के खातिर महासती सीता को अत्याचारी रावण के चंगुल से छुड़ाने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी थी।

कभी-कभी दो कर्तव्य एक साथ आ पड़ते हैं, उस समय कोई एक प्रमुख कर्त्तव्य चुनना पड़ता है। अधिकार से पहले कर्त्तव्य का पालन जरूरी है। एक समय फर्रुखाबाद में एक सेठ का लड़का

अचानक बस दुर्घटना में मर गया। बस के मुसाफिरों का खून खौल उठा और उन्होंने जोश में आकर ड्राइवर को इतना मारा कि वह बेहोश होकर गिर पड़ा। इसी बीच खबर मिलते ही लड़के के पिता वहाँ आ गये। देखा कि लड़का मर चुका है और ड्राइवर बेहोश पड़ा है। उसके सामने अब दो कर्त्तव्य आ खड़े थे। वह परम कर्तव्य से प्रेरित हुआ और ड्राइवर को दूसरी गाड़ी में बिठाकर उसे अस्पताल ले गया, उसके इलाज की व्यवस्था की और फिर वापस आकर अपने मृत लड़के के अन्तिम संस्कार की व्यवस्था की।

ऐसे कर्त्तव्य का पालन करो जिससे लोग कुछ प्रेरणा प्राप्त कर सकें, आपको अपना आदर्श मानें। ऐसे भी इंसान हैं जो कहते हैं मैंने भगवान को नहीं देखा मैं तो अमुक व्यक्ति को ही भगवान मानकर पूजता हूँ क्योंकि वह कभी भी कर्तव्य की चोरी नहीं करता, निष्ठा के साथ कर्तव्य का पालन करता है।

महानुभाव! अगली बात है-'अधिकारों का सम्यक् उपयोग' आपके पास जो कोई भी अधिकार हैं जीवन में कभी भी अधिकारों का दुरुपयोग करने का दु:साहस नहीं करना। अधिकारों का दुरुपयोग करना दुरावस्था, दु:ख और दुर्गति का ही कारण बनता है। आज जो अधिकार हैं उनका दुरुपयोग करते ही वे अधिकार छिन जाते हैं और उसके फलस्वरूप दण्डित होना पड़ता है। अधिकार चाहे एक मिला है या अनेक जो भी मिला है उसका सदुपयोग ऐसे करो जिससे अधिक से अधिक व्यक्तियों की भलाई हो सके, अधिक से अधिक व्यक्तियों को सुख शांति मिले। उन अधिकारों का प्रयोग देखकर के लोग ये कहें कि इसने वास्तव में अपने अधिकारों का सही प्रयोग किया है, यदि ये सामने वाले के हितार्थ अपने अधिकार का प्रयोग नहीं करता, तो सामने वाले को कष्ट सहन करना पड़ता, अनीति, अराजकता फैल जाती यदि ये अपने अधिकारों का प्रयोग नहीं करता तो मर्यादा भंग हो जाती, संस्कृति लुप्त हो जाती, हमारा धर्म और धर्मात्मा कष्ट में पड़ जाते।

अधिकारों का प्रयोग करो किन्तु सत्य की, धर्म की, संस्कृति की, सभ्यता की रक्षा करने के लिये करो।

समय आने पर अधिकारों का प्रयोग न करना भी एक अपराध है। जहाँ प्रयोग करना चाहिये वहाँ करना ही चाहिये, जहाँ नहीं करना चाहिये वहाँ मौन हो जाओ।

महानुभाव! अगली महत्त्वपूर्ण बात है तुम जहाँ कहीं भी रहते हो चाहे घर में या ऑफिस में, चाहे मित्रों के बीच या किसी भी यूथ में रहते हैं उस समूह में आप इतने महत्त्वपूर्ण बनकर रहो कि आप जब न पहुँचें तो आपका अभाव दूसरों को अखरे। आपकी अनुपस्थिति सबको खले। आप सभी के बीच आवश्यक बनकर रहो। भार बनकर नहीं रहो, जो दूसरों पर भार बन जाता है उसका जीवन स्वयं पर भी भार बन जाता है। इसलिये सदैव अपनी उपस्थिति को महत्त्वपूर्ण बनाओ। यदि आज तुम आवश्यक बनकर नहीं रहे तो आज नहीं तो कल वहाँ से उठा कर फेंक दिये जाओगे कि इसके बिना भी काम चल सकता है। आवश्यक बनकर रहोगे तो वह तुमसे एक क्षण भी अलग होना नहीं चाहेगा।

पिता बच्चों को रखे, बच्चों को यह एहसास होना चाहिये कि मेरा जीवन पिता के बिना नहीं चल सकता, उन्हें आवश्यकता महसूस होनी चाहिये। व्यक्ति जिस किसी भी अवस्था में रहे आवश्यक बनकर रहे इतना ही नहीं जिसे अपने पास रखता है उसे आवश्यक बनाकर के रखे भारभूत बनाकर के न रखे। ये न सोचे कि चल रह रहा है तो तू भी खा-पीले नहीं ऐसे नहीं। उस व्यक्ति को इतना योग्य बना दो कि वह अपने कार्य को इतनी कुशलता से करे कि उसके बिना अन्य कोई वह कार्य कर न पाये। वह जब आवश्यक बनकर रहेगा तो उसे भी जीवन में आनंद आयेगा। यदि वह भारभूत बनकर रहेगा तो न तो तुम उसे सहन कर पाओगे और वह भी अपना भारभूत जीवन सहन नहीं

कर पायेगा। जीवन में सुखशांति नहीं आ पायेगी। चाहे वस्तु चेतन हो या अचेतन। अचेतन वस्तु भी अपने पास वही रखो जिसकी आपको आवश्यकता है। अनावश्यक वस्तु तुम्हें दुर्गति की ओर, अनर्थों की ओर ले जायेगी। अनावश्यक को अलग करो, उसके बिना काम चल सकता है तो चलाओ, नहीं चल सकता है तो रखो।

अंतिम व्यवहारिक जीवन की विशेषता है, जिसके चित्त में शांति होती है, जिसके चेहरे पर मुस्कुराहट होती है और जिसके वचनों में मधुरता होती है, जिसकी क्रियाओं में दया का भाव निहित होता है ऐसा व्यक्ति नि:संदेह व्यवहार कुशल कहलाता है। ऐसा व्यक्ति नि:संदेह स्व-पर के जीवन को आनंदित करता है। ऐसे व्यक्ति का एक क्षण का जीया जीवन भी वरदान स्वरूप बनता है और दूसरों को अपनी संगति देकर उनका जीवन वरदान स्वरूप बना सकता है। जैसे एक प्रज्ज्वलित दीपक बुझे दीपकों के बीच में पहुँचकर क्षण भर का संस्पर्श हो जाये, तो वे सभी बुझे दीपक उसके संस्पर्श से जाज्ज्वल्यमान हो सकते हैं। आपका जीवन भी ऐसा हो, आप अपने जीवन में वह ज्योतिपुंज बनें और दूसरों को भी ज्योतिर्मय बनायें। ये व्यवहारिक जीवन की कुछ बातें कहीं जिनका आप चिंतन अवश्य करें व जीवन में धारण करने का प्रयास करें जिससे आप महान् व्यक्तित्व के धनी बनें। आपका जीवन आदर्श जीवन बने स्व और पर के लिये भी सुखद जीवन बने। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान की जय।।

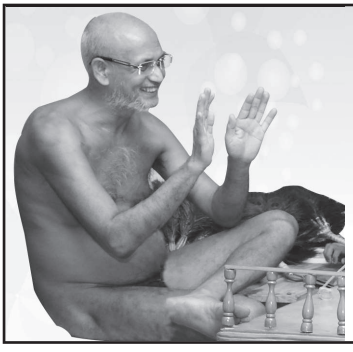

वृद्ध ही समृद्ध

महानुभाव! संसार में जितने भी बुद्धजीवी हैं वे सभी अपने जीवन में समृद्धि की कामना करते हैं, और वे एक प्रकार की नहीं सभी प्रकार की समृद्धि चाहते हैं। उत्कृष्ट शरीर, उत्कृष्ट वचनों का समूह, उत्कृष्ट मन में विचार, उत्कृष्ट निवास, आभूषण, सेवक, प्रतिष्ठा आदि सब कुछ उत्कृष्ट हो। कोई व्यक्ति ये नहीं चाहता कि मुझे जीवन में जघन्य वस्तु मिल जाये। किसी भी विद्यार्थी से पूछो-तुम परीक्षा में कितने नंबर चाहते हो, प्रत्येक विद्यार्थी यही कहेगा कि चाहने की पूछते हो तब तो मैं 100/100 नंबर चाहता हूँ, मुझे कितने मिलेंगे, मैं कितनी मेहनत करता हूँ ये अलग बात है।

समृद्धि के मायने होता है उत्कृष्ट वस्तु की सम्प्राप्ति। समृद्ध कौन है? एक बालक कहता है मैं समृद्ध हूँ, एक युवा कहता है मैं समृद्ध हूँ, एक पढ़ा लिखा व्यक्ति कहता है मैं समृद्ध हूँ, एक रूपवान् नारी भी कहती है मैं समृद्ध हूँ, एक अधिकारी भी कहता है मैं समृद्ध हूँ, सबकी समृद्धि की परिभाषायें अलग-अलग हैं। इन सभी को भले ही एक क्षण के लिये समृद्ध मान भी लें किन्तु इनकी समृद्धि अभी अधूरी है। अधूरी क्यों है? ज्ञान की परिपक्वता अनुभव की कसौटी के बिना नहीं होती। वृक्ष चाहे दो साल का हो या 20 साल का किन्तु फल पकने में समय लगता है। 20 साल के आम्र वृक्ष पर बौर आया, आम का फल लगा, अब वह फल लगते ही तोड लिया जाये तो वह मीठा न होगा। उस फल को पकने के लिये भी समय चाहिये। चाहे

वृक्ष 5 वर्ष का हो, पाँच वर्ष के वृक्ष पर लगा हुआ फल तीन महीने में पक गया तो वह मीठा हो सकता है और किसी बीस साल पुराने वृक्ष पर यूँ तो फल लगते थे, पर जो फल अभी तुरंत लगा हो तो वह कड़वा भी हो सकता है। उसे पकने के लिये ताप की आवश्यकता है, प्रतिकूलता की आवश्यकता है। जितना ज्यादा प्रतिकूलताओं का सामना किया जाता है उतना उसका अनुभव बढ़ता चला जाता है।

एक कोई छोटा बालक अपनी कोर्स की पुस्तक को पढ़कर 100/100 नंबर प्राप्त कर सकता है किंतु जब अनुभव की परीक्षा ली जायेगी तो वह 100 में से 10 नंबर भी ना ला पायेगा। एक वृद्ध चाहे पुस्तकीय ज्ञान में 100 में से 10 नंबर भी ना ला पाये किन्तु अनुभव के मामले में 100/100 नंबर ला सकता है।

शास्त्रीय ज्ञान, शब्द ज्ञान, पुस्तकीय ज्ञान एक सीमा तक अपना प्रभाव दिखाते हैं किन्तु अनुभव ज्ञान का प्रभाव सम्पूर्ण विभागों में रहता है। व्यक्ति चाहे किसी भी विभाग में हो जो जितना ज्यादा अनुभवशील होगा उसे उसी के अनुरूप प्रमोशन दिया जाता है। L.L.B. का एक विद्यार्थी अभी इसी साल पढ़कर आया है और एक ने पचास वर्ष पूर्व L.L.B. की। पचास साल पुराने वकील को उसके अनुभव के आधार पर जज बनाया जा सकता है। विभाग चाहे डॉक्टरी के क्षेत्र में हो या भारतीय पुलिस क्षेत्र का हो व्यक्ति का प्रमोशन उसके अनुभव के आधार पर किया जाता है।

अनुभव आता है समय के अनुसार। अनुभव जितना बाल्यावस्था में होता है वह अपने आप में अपर्याप्त होता है, क्योंकि बहुत लम्बी उम्र बची है। जिसके पास जितना ज्यादा अनुभव होता है वह उतना ज्यादा अनुभवी और समृद्ध माना जाता है। माना किसी व्यक्ति ने 50 वर्ष में किसी पद पर रहकर जितनी प्रतिकूलताओं का सामना किया हो उतनी ही या उसकी 10% प्रतिकूलताओं का सामना किसी ने एक

वर्ष में कर लिया हो, किन्तु फिर भी अनुभव अनुभव है। पचास साल वाले व्यक्ति का अनुभव और एक साल वाले का अनुभव बराबर नहीं हो सकता। पुस्तकीय ज्ञान भले ही बराबर हो या ज्यादा।

महानुभाव! इसलिये एक शब्द कहा जा सकता है, इसमें कोई भी शंका नहीं है कि 'वृद्ध ही समृद्ध' है। जो वृद्ध नहीं हैं वे समृद्ध नहीं हो सकते। 'वृ' अक्षर वृद्धि के अर्थ में आता है बढ़ना, उन्नति या उपलब्धि के अर्थ में भी आ सकता है। वृद्ध अर्थात् जिसके पास वृद्धि रूपी धन है, जिसके पास अच्छाईयाँ, उन्नतियाँ, उपलब्धियाँ व अनुभव रूपी धन है जो अनुभव रूपी पूंजी लेकर चल रहा है वह है वृद्ध। 'व' अक्षर अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण है। एक वृद्ध है-वयोवृद्ध वय की अपेक्षा से सम्मान किया जायेगा तो पहले वयोवृद्ध का किया जायेगा, वय से जो अल्प है उसका सम्मान बाद में किया जायेगा। एक होता है ज्ञानवृद्ध जो ज्ञान के क्षेत्र में बहुत वृद्ध है। एक है तपोवृद्ध जो दीर्घकाल से तपस्या करता चला आ रहा है, वह तपस्वियों की श्रेणी में अग्रिम स्थान ग्रहण करेगा और जो बालतप करने वाले हैं उन्हें सबसे पीछे बिठाया जायेगा।

वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, तपोवृद्ध अब आता है संयमवृद्ध, जो दीर्घकाल का दीक्षित साधु है कई वर्षों से संयम का पालन कर रहा है वह संयमियों की श्रेणी में प्रथम स्थान पर आयेगा और जो अभी हाल ही का दीक्षित है वह स्थान पीछे प्राप्त करेगा। एक होता है अनुशासन वृद्ध। जैसे कोई व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में चाहे विद्यालय हो या कोई संस्था वहाँ एक वर्ष तक अनुशासन में रहा उसका जीवन एक साल तक अनुशासित रहा, उसके पहले वह अनुशासन विहीन था आज भी विहीन है किन्तु एक व्यक्ति जो लगातार 30-40 साल से अनुशासन में रह रहा है तो वह सम्मानीय पहले है। इसके उपरांत आता है अनुभव वृद्ध। इन सभी वृद्धों में जिसका अनुभव हर क्षेत्र में ज्यादा है वह वास्तव में अनुभववृद्ध ही समृद्ध है।

जो अनुभव के क्षेत्र में वृद्ध नहीं है कोई ऐसा भी हो सकता है कि आयु से तो वृद्ध हो गया किन्तु उसे किसी काम का अनुभव नहीं है। किसी दूसरे को ज्यादा अनुभव है तो वह अनुभववृद्ध ज्यादा समृद्ध है। बड़ी उम्र वाला वृद्ध वयोवृद्ध तो हो सकता है पर अनुभव वृद्ध नहीं हो सकता।

आचार्य भगवन् श्री शुभचंद्र स्वामी ज्ञानार्णव ग्रंथ में कहते हैं-

तपः श्रुतधृतिध्यान-विवेक-यम-संयमैः।
ये वद्धास्तेऽत्र शस्यन्ते न पुनः पलिताङ्कुरैः।।७७५।।

लोक में जो तप, श्रुत, धैर्य, ध्यान, विवेक, यम (व्रताचरण), और संयम (इन्द्रियनिग्रह) इन गुणों के द्वारा वृद्धि को प्राप्त हैं उन वृद्धों की ही प्रशंसा की जाती है। किन्तु जो बालों की सफेदी से वृद्धि को प्राप्त हैं-अवस्था में ही वृद्ध हैं-उनकी लोक में प्रशंसा नहीं की जाती है।

महानुभाव! जो अनुभव वृद्ध हैं उनका वह अनुभव उनकी निजी पूंजी है उसे कोई छीन नहीं सकता। किसी अमीर के पास धन है किसी नारी के पास सुंदर रूप है, किसी विद्वान् के पास शब्दों का कोष है, किसी के पास आज्ञाकारी सेवक हैं, किसी के पास सुंदर स्त्री है, किसी के पास बहुत बैंक बैलेंस है ये सभी चीजें छीनी जा सकती हैं और छूट भी सकती हैं।

धनी का धन छीना जा सकता है। सुंदर स्त्री कुरूपा हो सकती है, विद्वान् जिसके पास शब्दों का कोष है उसकी memory भी जा सकती है। आज जिसके पास अच्छे सेवक हैं वे कल बदल भी सकते हैं। किसी की मनोहारी प्राणवल्लभा स्त्री भी कल उसके विपरीत हो सकती है, प्रतिष्ठा में भी अंतर आ सकता है किंतु अनुभवी व्यक्ति के अनुभव को कोई छीन नहीं सकता, कोई लूट नहीं सकता, वह छूट नहीं सकता। वह सदैव उसके साथ रहेगा। परछाई भले ही अंधकार में उसका साथ छोड़ जाये, बुढ़ापे में भले ही काया उसका साथ न दे।

''अंधकार में छाया, बुढ़ापे में काया, मृत्यु के समय माया साथ नहीं देती''।

किंतु अनुभवी का अनुभव सदा साथ देता है। एक बार एक राजा जिनका नाम आदित्यराज था जो अपनी प्रजा का बहुत ध्यान रखते थे। एक दिन उन्होंने अपने मंत्री से पूछा कि नगर में सबसे बुजुर्ग व्यक्ति कौन है? आदित्यराज जानते थे कि बुजुर्गों के पास काफी अनुभव होता है और वे उस अनुभव के महत्त्व को महसूस करना चाहते थे।

मंत्री ने जानकारी प्राप्त करने के बाद बताया कि मनोहर नामक एक दर्जी है जो करीब 80 साल का है वह नगर में सक्रिय बुजुर्ग है। वह आज भी दुकान चलाता है और सभी लोग उसका आदर करते हैं। अगले ही दिन आदित्यराज भेष बदलकर अपने मंत्री के साथ मनोहर की दुकान पर पहुँच गये। मनोहर अपने काम में लगा था उसने आदित्यराज को ग्राहक समझकर अभिवादन किया। राजा आदित्यराज ने कहा कि वे उसकी दुकान पर कुछ देर विश्राम करना चाहते हैं। मनोहर ने उन्हें उसकी इजाजत दे दी। और अपना काम शुरू कर दिया।

आदित्यराज और उनका मंत्री, मनोहर के काम पर लगातार नजर रखे हुए थे। उन्होंने देखा कि मनोहर कपड़ा काटने के लिए कैंची को उठाता, कपड़ा काटता और उसे फिर से जमीन पर रख देता। इसके बाद वह अपनी टोपी में से सुई निकालता और कपड़ा सिलने लगता। इसके बाद वह अपनी सुई को फिर से टोपी में लगा लेता। यह क्रम लंबे समय तक जारी रहा। जिज्ञासा वश आदित्यराज ने मनोहर से पूछा, 'आप कैंची को जमीन पर रख रहे हैं और सुई को टोपी में लगा रहे हैं। ऐसा क्यों? 'मनोहर ने आदित्यराज की ओर देखा और कहा, यह एक सबक है, जिसे जिन्दगी ने मुझे सिखाया है। कैंची काटकर बांटने का काम करती है, इसलिये उसकी जगह पैरों में ही होनी चाहिये। वहीं सुई सिलकर जोड़ने का काम करती है इसलिये उसकी जगह सिर पर

होनी चाहिए। मैं जिंदगी में लोगों को भी इसी तरह से रखता हूँ। यह सुनते ही आदित्यराज ने मनोहर को प्रणाम किया और अपनी पहचान बताई। इसके बाद उन्होंने उस वृद्ध दर्जी को इनाम देकर अपना खास सलाहकार बना लिया।

तो महानुभाव! जो वृद्ध का तजुरबा है, हुनर है, जो उसकी कला है उसे कोई छीन नहीं सकता। अनुभवी व्यक्ति मानो द्वार पर खड़ा हुआ पुराना वृक्ष, जो बीसों साल से ऑक्सीजन दे रहा, ठंडी छाया व हवा भी दे रहा है, जिस पर फल-फूल लगते थे। वह वृक्ष वृद्ध हो गया। द्वार पर खड़ा हुआ वृक्ष उस घर की शोभा है। जिसके द्वार पर बूढ़ा वृक्ष खड़ा हुआ है वह परिवार आज का सम्पन्न नहीं, पुराना परिवार है। जैसे वृक्ष की जड़ें बहुत गहरी हैं, वैसे ही वह परिवार भी प्रतिष्ठित परिवार है। जिस व्यक्ति के द्वार पर एक-एक फीट के गमले रखे हुये हैं, उस व्यक्ति का भरोसा नहीं, तत्काल की प्रतिष्ठा है, फूल खिल रहे हैं कब मुरझा जायें कब क्या हो जाये, कब दिवाला निकल जाये कुछ कह नहीं सकते।

यदि किसी ने थर्माकोल का सुंदर दरवाजा बनाया है तो वह दरवाजा चंद क्षण के लिये किसी के चित्त को लुभा सकता है किंतु अनुभवी व्यक्ति को धोका नहीं दे सकता। अनुभवी व्यक्ति कहेगा इसका कोई भरोसा नहीं है, विश्वास के योग्य नहीं है किन्तु जिसकी हवेली 100 साल पुरानी है। पुरानी नक्काशी वाला जिस पर सुन्दर दरवाजा बना हुआ है उसे देखकर कहेगा लगता है कई पीढ़ियों पुराना यह महल है। जैसे बूढ़ा वृक्ष व्यक्ति की प्रतिष्ठा का प्रतीक है उसकी जितनी गहरी जड़े हैं उतना ऊपर दिखाई दे रहा है ऐसे ही वृद्ध पुरुष जिस घर में रहते हैं उस घर की प्रतिष्ठा नि:संदेह प्रमाणिक होती है। और जिस घर में छोटे-छोटे पौधे हैं जिसमें चार अंगुल की जड़ है वह पौधा हवा के झोके से कब उखड़कर गिर जाये उस पर कोई विश्वास नहीं किया जा सकता।

महानुभाव! चंदन की सुगंधि, जल की शीतलता, अग्नि की ऊष्णता, हवा का बहना ये अपने आप में नियामक हैं। चंदन चंदन है कितना भी रगड़ो, काटो, जलाओ सुगंधि कम नहीं होती। चंदन की लकड़ी का मूल्य कम नहीं होता चाहे लकड़ी थोड़ी हो या ज्यादा। स्वर्ण का मूल्य कम नहीं होता चाहे रत्ती भर सोना है चाहे किलोभर। रत्नों का मूल्य कम नहीं होता, ऐसे ही अग्नि अग्नि है चिंगारी हो या धधकती आग। जल जल है चाहे थोड़ा या बहुत, गंधोदक गंधोदक है चाहे वह एक बूंद हो या कलश भर। ऐसे ही वृद्ध वृद्ध होता है उसकी समृद्धि को कौन छीन सकता है। वृद्ध बूढ़े वृक्ष की तरह से है। बूढ़ा वृक्ष रहेगा तो घर की प्रतिष्ठा को बढ़ायेगा, बूढ़ा वृक्ष प्रमाणिक होता है। चाहे उस पर पत्ते न भी हों फिर भी रक्षा कर ही रहा है उसकी जड़ें गहरी हैं।

जिस परिवार में वृद्ध का सम्मान होता है, जिस परिवार में वृद्धों की सेवा होती है, जहाँ वृद्धों के संकेत से ही कार्य होता है, उनकी आज्ञा व संकेतों का उल्लंघन नहीं किया जाता उस परिवार को कोई भी मिटा नहीं सकता। वह वंश कभी बर्बाद नहीं होता। वंश वे ही बर्बाद हुये जिन वंशों में वृद्ध नहीं रहे। जिन वंशों के वृद्ध घर छोड़कर वृद्धाश्रम में चले गये या कहीं और चले गये, तो यही समझो उन वंशों की सुरक्षा कर पाना बहुत कठिन है। जैसे बूढ़े वृक्ष तो उखाड़कर फेंक दिये जायें और नये पौधों को लगाया जाये तो गारण्टी नहीं है वे पौधे कब तक बड़े होंगे क्योंकि अब मिट्टी बहुत ढीली हो गयी है। वृद्ध वृक्ष की जड़ें तो बहुत गहरी थीं उन्हें उखाड़कर ढीली मिट्टी में छोटा पौधा लगा भी दोगे तो वह हवा के झोके से उखड़ जायेगा।

कई बार, कई व्यक्तियों के मुख से सुना है वे कहते हैं भाई! क्या बतायें जब से हमारे दादा गये हैं हम अनाथ जैसे हो गये। ऐसा लगता है सबसे अधिक पुण्यात्मा वे ही थे। वे सदैव हमें समझाते थे, धैर्य बंधाते थे वे हमें कभी टूटने नहीं देते थे। महानुभाव! ये वृद्ध पुरुष

तो कामधेनू गाय की तरह से हैं सभी मनोभावनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। जिनके ऊपर वृद्धों का साया है, वृद्धों की छत्रछाया है, जो वृद्धों के आगोश में हैं वे चाहे होश में काम करें या जोश में वे कभी असफल नहीं होते।

एक बार किसी राजकुमार का संबंध तय करने के लिए मंत्री-पुरोहित आदि राजकुमारी के यहाँ पहुँचे। संबंध तय हुआ किन्तु राजकुमारी के यहाँ से एक शर्त रखी गयी कि बारात में कोई भी वृद्ध पुरुष नहीं आना चाहिये। राजकुमार ने शर्त स्वीकार कर ली। बारात गयी, युवाओं की टोली उस बारात में पहुँच गयी। किन्तु राजा ने एक वृद्ध मंत्री को बारात में एक संदूक में रखकर भेज दिया। बारात लेकर पहुँचे तो लड़की वालों ने पुनः शर्त रख दी कि हम राजकुमारी का विवाह तब करेंगे जब लड़के वालों के यहाँ से बालू की बनी एक रस्सी जो मॉडने में बांधी जाती है वह आये तभी विवाह होगा। बारात में खलबली मच गयी कि बालू की रस्सी कैसे बनायें? यदि बारात लौटाकर ले जाते हैं तो हमारी प्रतिष्ठा पर दाग लगता है। क्या करें? तभी वह वृद्ध मंत्री जिसको संदूक में बंद करके लाये थे, उसके पास गये, पूछा-मंत्री महोदय क्या करें? मंत्री ने कहा घबराओ मत उनके पास जाओ कहो-हम पहली बार बारात लेकर आये हैं, तुम्हारे यहाँ की परम्परा है हम निभायेंगे किंतु आपके यहाँ तो शादियाँ बहुत हुयी हैं आपके यहाँ मॉड़ने में रस्सी बांधी जाती होगी आप हमें उस रस्सी का सेम्पल पीस दे दो हम तुंरत वैसी रस्सी मंढकर ले आयेंगे।

वे पहुँचे और वृद्ध मंत्री ने जो कहा था वह सब कुछ उनसे कह दिया और रस्सी मांगी। लड़की वाले बोले हमारे पास तो रस्सी नहीं है। पर पहले ये बताओ तुम्हारी बारात में कोई वृद्ध पुरुष तो नहीं है, वे बोले आप ही ने तो मना किया था, इसलिये हम लेकर नहीं आये। तब राजकुमारी का पिता बोला ऐसा तो हो ही नहीं सकता कि

आपके साथ कोई वृद्ध न आया हो। यह समाधान, ऐसा प्रतिउत्तर कोई वृद्ध पुरुष ही दे सकता है युवा तो केवल तलवार निकाल सकता है।

महानुभाव! कहने का आशय यही है कि वृद्धों का सम्मान ही वास्तव में संस्कृति का सम्मान है। वृद्ध पुरुष के चेहरे पर पड़ी एक-एक झुर्री में 100-100 शास्त्रों का अनुभव छिपा रहता है। वृद्ध ही समृद्ध है, वृद्ध ही चलता-फिरता विश्व विद्यालय है इसलिये वृद्धों का सम्मान करो, वृद्धों की सेवा करो, उनसे आशीर्वाद लो। हो सकता है किसी और की दुआ कबूल हो या न हो पर वृद्धों का आशीर्वाद कभी खाली नहीं जाता।

कहा भी है-

कदाचिद्दैववैमुख्यान्मातापि विकृतिं व्रजेत्।
न देश कालयोः क्वापि वृद्धसेवा कृता सती॥782॥ ज्ञानार्णव

दैव के विपरीत होने पर कदाचित् माता तो विकार को प्राप्त हो सकती है-वह अपनी हितकारता को छोड़ भी सकती है, परन्तु विधि पूर्वक की गई वह वृद्धसेवा किसी भी देश और किसी भी काल में विकार को प्राप्त नहीं होती है-वह सदा और सर्वत्र ही प्राणी का हित किया करती है।

वह आशीर्वाद उनकी अन्तरात्मा से निकलता है, जिन्हें मिलता है वह सफल होता है। आप भी वृद्धों की सेवा करेंगे, कभी भूलकर भी उनका अनादर नहीं करेंगे, उनकी आज्ञा का पालन करेंगे, उनकी सेवा करके मेवा प्राप्त करेंगे इसी विश्वास के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

॥श्री शांतिनाथ भगवान की जय॥

मुस्कुराओ तो ऐसे

महानुभाव! हमें और आपको यह बहुमूल्य जीवन मिला है, इसे अच्छी तरह से जीने की कोशिश करें। यह जीवन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है और अत्यंत महत्त्वपूर्ण वस्तु का उपयोग भी भली प्रकार करना चाहिये, इसमें प्रमाद नहीं करना चाहिये। जब कोई व्यक्ति अवसर मिलने पर किसी बड़े व्यक्ति से मिलता है, तो वह सोचता है इसके माध्यम से मैं कौन सा उत्कृष्ट से उत्कृष्ट लाभ प्राप्त कर सकूँ। वह कोई छोटा-मोटा लाभ नहीं चाहता। राष्ट्रपति से मिले, तो ये नहीं कहेगा कि मेरा राशनकार्ड बनवा दो। राष्ट्रपति से मिलकर तो यह कह सकता है कि मुझे लोकसभा में सदस्यता के लिये कुछ मदद कर सकते हैं क्या? या राज्यसभा का सदस्य मैं बनूँ आप कोई सहायता कर सकते हैं क्या? या में C.M., P.M. बनने की तैयारी कर रहा हूँ आपका मार्गदर्शन चाहता हूँ ये बातें कहना तो ठीक लगता है, किंतु तुच्छ बात कहना स्वयं की तुच्छता का प्रमाण है।

जब ये जीवन इतना महत्त्वपूर्ण है। तो इसमें महत्त्वपूर्ण कार्य करें। ऐसे कार्य न करें जिन कार्यों के करने से जीवन कलंकित होता हो, अभिषिक्त होता हो, निरर्थक होता हो, अनर्थकारी होता हो। जीवन साकार, सफल एवं सार्थक कैसे बनेगा इसके लिए सीधी-सीधी बात ये है कि हम इस जीवन को जितना शांति से जीयें, खुशी से जीयें उतना हमारा जीवन अच्छा है। यदि हमारे जीवन में Tension, संक्लेशता, दुःख, पीड़ा, मजबूरियाँ, बेबसी, उत्पीड़न ये सब चीज हैं तो यही कहना

पड़ेगा कि हम जीवन का सही सदुपयोग नहीं कर पाए। दो पंक्ति किसी कवि की हैं-

जिन घड़ियों में हँस सकते हैं उन घड़ियों में रोयें क्यों?
जिन घड़ियों में जग सकते हैं उन घड़ियों में सोये क्यों?

तो जो घड़ी हमारे लिए हँसी खुशी की हो सकती है, जिन घड़ियों में हम पुष्प की सुगंध लेकर के, सौंदर्य को देखकर के आनंद का अनुभव कर सकते हैं उन घड़ियों में कांटे चुनकर के, चुभा-चुभा के कष्ट प्राप्त क्यों करें।

हमारे सामने दो मार्ग हैं, एक मार्ग है शांति का दूसरा अशांति का, एक मार्ग है हम संतुष्ट रहें दूसरा मार्ग है असंतुष्ट रहें। एक मार्ग है हम क्षमाशील बन कर रहें दूसरा क्रोधी बनकर रहें। एक मार्ग है हम दीन-हीन बनकर रहें दूसरा दानी/उदार हृदय वाले बनकर रहें। एक मार्ग अत्याचार का है दूसरा परोपकार का है, सभी रास्ते हमारे पास हैं। यदि हम रोते हैं तो हमें कोई चुप करने वाला नहीं, आप कह सकते हैं मेरी जिंदगी है, मैं तो रो-रो कर बिताऊँगा। कौन आकर तुम्हें मना करेगा कि तुम मत रोओ। कोई व्यक्ति जब डिप्रेशन में होता है तब यदि उसे समझाओ तो वह एक ही उत्तर देता है मेरी जिंदगी, तुम कौन होते हो उसमें दखल करने वाले मैं जैसे चाहूँगा वैसा जीऊँगा। यदि तुम हँसते हो, मुस्कुराते हो, आनंद के साथ जीते हो तब भी तुम्हें मना करने वाला कोई नहीं तुम्हारी खुशी को कोई छीनने वाला नहीं है।

महानुभाव! व्यक्ति आनंद लेना चाहे तो आनंद ले सकता है और शोकाकुल बैठना चाहे तो वैसे भी बैठ सकता है दोनों मार्ग व्यक्ति के पास हैं। किंतु हाँ एक बात अवश्य ध्यान देने योग्य है कि हँसने से मुस्कुराना ज्यादा अच्छा होता है। हँसना कभी लोकव्यवहार के विरुद्ध भी होता है किन्तु मुस्कुराना विरुद्ध नहीं होता। किसी के साथ हँसना अच्छा है किन्तु किसी के ऊपर हँसना अच्छा नहीं है। मुस्कुराना हमेशा

साथ में होता है, किसी को देखकर भी मुस्कुराओगे तो उसे बुरा नहीं लगेगा, वह यही अंदाजा लगायेगा कि मुझे देखकर प्रीति कर रहा है, वह मुझे चाहता है। मुस्कुराने में बाधा नहीं है, मुस्कुराना कभी लोक व्यवहार के विरुद्ध नहीं माना जाता।

चाहे आप अकेले बैठे हों या भगवान के पास सदा मुस्कुराओ, कभी शत्रु पक्ष के साथ बैठे हों या मित्रमण्डली के साथ तब भी मुस्कुराओ। मुस्कुराने से शरीर में Blood का शुद्धीकरण होता है। गुमसुम बैठे रहने से हमारे शरीर के cells dead होने लगते हैं, चिड़चिड़ापन आने लगता है क्रोध की अग्नि व संक्लेशता पैदा होने लगती है। मुस्कुराने से अंदर से प्रेम जाग्रत होने लगता है, वात्सल्य, भक्ति जाग्रत होती है इतना ही नहीं चेहरे पर कांति, चित्त में शांति होती है, मित्रों की संख्या बढ़ती है, शत्रु पक्ष भयभीत होता है। वह शत्रु सोचेगा इसके पास जरूर ऐसी कोई चीज है जिसके कारण यह निर्भीक है, यह तो अपनी मौत से भी नहीं डर रहा।

मुस्कुराना, शत्रु के सामने उसकी शक्ति को कम कर देना है और रोना उस शत्रु की क्रूरता को बढ़ाना है। मुस्कुराने वाला व्यक्ति स्वस्थ रहता है। मुस्कुराने वाले को अच्छे व्यक्ति ऐसे ही घेर लेते हैं जैसे किसी पुष्प को भ्रमर, किसी जलते दीप को परवाने (पतंगे) घेर लेते हैं। ऐसे ही मुस्कुराने वाले व्यक्ति के पास सभी बैठना चाहते हैं, उससे बोलना चाहते हैं, उसकी बात सुनना चाहते हैं।

एक बार वैशाली के राजकुमार महल के अंदर बने उद्यान में, किसी वृक्ष के नीचे बैठे थे, बहुत शांति से बैठे थे चेहरे पर कांति, बड़ा तेज और चमक, ऐसा लग रहा था शरीर में से विशुद्ध वर्गणायें निकल रही हों एक आभामण्डल सा बन रहा था। उसी समय मगधपति श्रेणिक का पुत्र अजातशत्रु (कुणिक) राजकुमार वर्धमान से मिलने आया। उनसे मिलकर उसे बहुत खुशी हुयी, साथ ही मन में एक जिज्ञासा भी हुयी,

उसने कुमार वर्धमान से पूछा भैया! तुम्हारे चेहरे पर इतनी शांति कैसे है? राजाओं के चेहरे पर इतनी शांति कहाँ? तुम्हारे चेहरे पर इतना तेज है, इतना ओज है राजा तो सदैव राजकीय सुरक्षा की चिंता से ग्रसित रहते हैं आपको देखकर ऐसा लगता है जैसे सारी शांति यहीं सिमट कर आ गयी है। तुम जब मंद-मंद मुस्कुराते हो तो ऐसा लगता है स्वर्ग से देवगण पुष्पवृष्टि ही कर रहे हों लगता है जैसे अमृत की वर्षा हो रही हो, लगता है जैसे आनंद की बयार चल रही हो। इसका क्या कारण है? मैं भी राजकुमार हूँ किंतु मैं तुम्हारी तरह इतनी शांति से नहीं बैठ सकता, मुस्कुरा नहीं सकता, मेरे चेहरे पर इतनी कांति नहीं है क्या बात है?

कुमार वर्धमान ने कहा बस मुस्कुराते रहो। कुणिक! मैं अतीत को सोचता नहीं, भूत को भूत मानकर के छोड़ देता हूँ और भविष्य जो अजन्मा है उसकी परिकल्पना नहीं करता। भूतकाल में क्या हुआ अच्छा या बुरा इसको लादकर नहीं चलता। मेरा मस्तिष्क उस सिलेट की तरह है जब लिख रहे हैं बस तब अक्षर दिखायी दे रहे हैं, बाद में सब साफ। और जो आगे लिखूँगा वह भी सिलेट पर नहीं है। मैं वर्तमान काल में जीता हूँ इसलिये वर्धमान हूँ चेहरे पर शांति भी है, कांति भी है कोई भ्रांति भी नहीं है। कुणिक तुम भी अभी से मुस्कुराओ, मुस्कुराना ही सुखी जीवन का राज है।

मुस्कुराने से गम दूर होते हैं। किसी ने ठीक ही कहा है-

''मुस्कुराकर रंज औ गम जिसको पीना आ गया,
सच कहता हूँ उस मानव को सही में जीना आ गया।।

महानुभाव! जो मानव किसी भी परिस्थिति में चाहे दुःख हो, दर्द हो, दरिद्रता हो कितनी भी प्रतिकूलता हो सब में मुस्कुराता रहता है सत्यता यही है कि जीवन का सही पाठ तो उसी ने सीखा है। वही सही जीवन जीने का अधिकारी है। जो आँसू बहाते-बहाते जीवन जीता है वह जीता नहीं वरन् गधे के समान अपने जीवन का भार ढोता है। जो मुस्कुराकर जी रहा है वह तो सम्राटों का सम्राट है।

अनुकूलता में तो दुनिया मुस्कुराती है, मुस्कुराओ तो ऐसे कि प्रतिकूलताओं में भी मुस्कुराते रहो। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को (शत्रु को) बंधक बनाकर उसके साथ बदसलूकी कर रहा है। उस पर लगे घावों को और गहरा कर रहा है, इतना ही नहीं उन घावों में नमक मल रहा है और मुस्कुरा रहा है। जिसके घावों में नमक-मिर्ची डाल रहा था वह व्यक्ति उससे कहता है- ''मेरे घावों में तुम नमक मलकर क्या मुस्कुराते हो अरे! मेरे जख्मों को देखो और मेरे चेहरे को देखो मुस्कुराना तो इसे कहते हैं। इतनी प्रतिकूलता में जो मुस्कुरा सकता है, वही सच्ची मुस्कुराहट है, तेरी मुस्कुराहट तो क्रूरता है। पाप का बंध कराने वाली है।

महानुभाव! सत्यता तो ये ही है साथ में शत्रु हो या मित्र सदा मुस्कुराओ। कभी मन में शिकायत मत लाओ। एक व्यक्ति ने कहा-

''मेरे मित्रों ने मेरे जख्मों का किया कुछ इस तरह उपचार,
मरहम भी लगाई तो कांटे की नोक से।

किन्तु वह मित्र फिर भी मुस्कुराता रहता है। तू चाहता है मैं हरा भरा रहूँ और जख्म भी हरे भरे रहें। मुस्कुराहट देख मित्र को लगा कि मैं वास्तव में गलती कर रहा हूँ। अरे मरहम लगा ही रहा हूँ तो कांटे की नोक से क्यों लगाऊँ रुई लेकर भी लगा सकता हूँ तब उसे अपनी गलती का अहसास हुआ।

एक व्यक्ति ने किसी हलवाई की दुकान से कुछ लड्डू खरीदे और डिब्बे में पैक करवा लिये। उस हलवाई ने 5 लड्डू एक छोटे से डिब्बे में पैक कर दिए। वह व्यक्ति उन्हें लेकर एक उद्यान में पहुँचा। जेब से उपन्यास निकालकर पढ़ने लगा और अपना कोट एवं लड्डू का डिब्बा अपने बगल में रख दिया। तभी एक दूसरा व्यक्ति वहाँ आया और उसके पास बैठकर उसे बिना डिस्टर्ब किये वह लड्डू खाने लगा, पहले व्यक्ति ने देखा उसे बड़ा गुस्सा आया। किन्तु वह एक लड्डू खा चुका था, देखते-देखते दूसरा लड्डू भी खा लिया, पहले वाले का गुस्सा और बढ़ गया। किन्तु उसने तीसरा लड्डू भी खा लिया। अब तो पहले वाले ने फटाफट चौथा लड्डू उठाया और खा लिया। पर दूसरा

व्यक्ति मुस्कुराता ही रहा। अब अंतिम लड्डू बचा तो दूसरे वाले व्यक्ति ने आधा लड्डू तोड़कर उस नोबल पढ़ने वाले को दे दिया और आधा खुद खाकर के मुस्कुराने लगा। नोबल पढ़ने वाला सोच रहा था ये मुझे आधा लड्डू देकर ऐसे खुश हो रहा है जैसे मुझ पर एहसान कर रहा हो, मेरे 3½ लड्डू खा गया। वह दूसरा व्यक्ति उठा और धन्यवाद कहता हुआ आगे चला गया।

उस पहले व्यक्ति का मन तो खराब हो ही गया था उसने नोबल पढना बंद किया, अपना कोट उठाया और उठने लगा। जैसे ही उठने को हुआ उसने देखा उसके कोट के नीचे लड्डू का डिब्बा तो ज्यों का त्यों रखा था वह सोच में पड़ गया कि उस व्यक्ति ने फिर किस डिब्बे के लड्डू खाये थे। दरअसल में वह व्यक्ति भी उसी दुकान से पाँच लड्डू लेकर आया था। उसने वहीं बैठकर वे लड्डू खाये थे। किन्तु वह नोबल पढ़ने वाला व्यक्ति यह सोचकर कि ये मेरे लड्डू खा रहा है उसे आँख दिखाता रहा, झुंझलाता रहा किन्तु फिर भी वह व्यक्ति मुस्कुराता रहा। पहले व्यक्ति ने सोचा 1½ लड्डू मुझे खिलाकर भी उसने ये नहीं कहा कि तू क्यों गुस्सा कर रहा है। यह डिब्बा मेरा है ऐसा उसने कुछ भी नहीं कहा बस मुस्कुराता रहा। सत्यता तो ये है कि मुस्कुराना तो इसे कहते हैं। पहला व्यक्ति भ्रम से गुस्सा होता रहा और दूसरा आनंद से अपने लड्डू खिलाकर भी मुस्कुराता रहा।

महानुभाव! जीवन में प्रतिकूलताओं में मुस्कुराना ही सच्चा मुस्कुराना है अनुकूलता में मुस्कुराना कोई विशेष बात नहीं है। आप सभी जीव़न के प्रत्येक पथ पर मुस्कुराते रहो, हर क्षण मुस्कुराते रहो। किसी सरकार ने अभी तक मुस्कुराने पर टैक्स नहीं लगाया। मुस्कुराने से आपकी औषधि कम हो जायेगी, डॉक्टरों के पास नहीं जाना पड़ेगा लड़ाई झगड़े भी खत्म हो जायेंगे और आपके घर में स्वर्ग आकर निवास करने लगेगा। आप से यही कहता हूँ मुस्कुराते रहो-मुस्कुराते रहो सदा मुस्कुराते रहो इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान की जय।।

कैसे बचें शत्रुओं से

महानुभाव! जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिये, अच्छाईयाँ प्राप्त करने के लिये, जीवन में सुख शांति प्राप्त करने के लिये, अपने कार्य की सिद्धि के लिये आवश्यक है दूसरों का सहयोग। बिना सहयोग के जब कोई व्यक्ति एकाकी चलता है तब वह मार्ग में हताश व निराश भी हो सकता है। उत्साह के साथ चले तब संभावना है मार्ग में सहयोगी मिलें, मित्र भी मिलते हैं। मित्रों के बिना जीवन बड़ा अधूरा होता है, मित्रों के बिना प्राप्त की हुयी विजय पूर्ण आनंद को नहीं दे सकती, मित्रों के बिना लोग कहते हैं भोजन भी अच्छा नहीं लगता। चार मित्रों के बीच में ही अपनी किसी उपलब्धि को बताया जाता है, तब मन आनंद से भर जाता है।

जिन्हें व्यक्ति अपना मानता है उन्हें अपना सुख-दु:ख बताता है, और अपनी उपलब्धि को भी बताता है। व्यक्ति अपनी प्रतिकूलता, वेदना सब कुछ बाँटता है। मित्रों का सहयोग भगवान की तरह माना जाता है। जब व्यक्ति अपने जीवन में हताश हो गया हो, वह बेसहारा और बेचारा, अनाथ जैसा हो रहा हो तब मित्र आकर यदि उसका दामन थाम लें तो ऐसा लगता है जैसे किसी भगवान ने ही मित्ररूप में आकर मेरी सहायता की है।

मित्र नि:संदेह दु:खों को दूर करने में समर्थ हैं, मित्र उलझन को सुलझा देते हैं, मित्र प्रतिकूलता में अनुकूलता बना देते हैं मित्रों के बीच प्रतिकूलता भी अनुकूलता रूप महसूस होती है। मित्र वे हैं जो

हमें समागत आपत्ति-विपत्ति से बचाते हैं। मित्र वे हैं जो हमें अहित के मार्ग से बचा कर हित के मार्ग में लगा देते हैं, मित्र वे हैं जो हमारे गुणों को प्रकट करने के लिये हमें प्रेरित करते रहें, मित्र वे हैं जो हमें सहारा देने के लिये सदा तत्पर रहें। मित्र वे हैं जो स्वयं दुःख झेलकर भी हमारा उपकार करने को तैयार रहते हैं और हमारे साथ किये अच्छे कार्य को एहसान मानकर नहीं वरन् सहज भाव से उपकारी होते हैं।

महानुभाव! जीवन में मित्रों का सहयोग परम आवश्यक है। चाहे आप किसी भी क्षेत्र में जायें वहाँ आपका सहयोग करने वाला जो कोई भी हो, वह तुम्हारे मित्र की तरह से है। किन्तु मित्रों का सहयोग हम मानते हैं द्वितीय स्थान पर होना चाहिये। प्रथम स्थान उनका है जो हमारे कार्य में बाधक हैं। देखो पहले शत्रुओं से बच जाओ, मित्र तुम्हें बहुत मिलेंगे। शत्रुओं के बीच में घिरे हुये होंगे तो शायद मित्र तुम्हारी रक्षा सहायता न कर पायें। पाप से बच जाओ पुण्य तुम्हें अनायास ही प्राप्त होने लगेगा। बुराई से बच जाओ, भलाई तुम्हें अपने आप मिल जायेगी। अंधकार से बचो प्रकाश तुम्हारे पास अपने आप आ जायेगा।

इसी तरह दुःखों का परित्याग करो सुख की राह तुम्हें मिल जायेगी, व्यसनों से बचो अच्छे कार्य करने की आदत आ जायेगी। कुसंस्कारों को छोड़ो सुसंस्कार मिल जायेंगे। आशय ये है कि हम शत्रुओं से बचें। शत्रुओं से बचेंगे तो फिर जो कोई भी हमारे पास रहेगा वह हमारा मित्र ही बन जायेगा। शत्रु कौन हैं? बाहर के शत्रु तो ज्यादा से ज्यादा आपके धन को छीन सकते हैं, आपके वस्त्राभूषण, मकान, दुकान छीन सकते हैं, वे शत्रु आपके परिवार को अगल-अलग कर सकते हैं इन सबके छिन जाने के उपरांत भी व्यक्ति सुख-शांति का अनुभव कर सकता है किन्तु सबसे ज्यादा घातक होते हैं अंतरंग के शत्रु।

महानुभाव! बाहर में मित्रों की भीड़ लगी भी हो क्या फर्क पड़ता है यदि अंतरंग में शत्रु बैठे हुये हैं तो वे शत्रु शांति से न बैठने देंगे। जैसे किसी व्यक्ति के शरीर में कोई वेदना है वह व्यक्ति तड़प

रहा है अपने दर्द से, उसे A.C. Room में भी रख दिया जाये तो क्या फर्क पड़ रहा है उसे अंदर से जो कष्ट हो रहा है उसका निराकरण बाह्य सामग्री नहीं दे पा रही। अच्छे-अच्छे चित्र, अच्छी सुगंधित वायु, पर्यावरण की अनुकूलता, धर्मवाक्य भी सुनाये जा रहे हैं इससे क्या फर्क पड़ेगा? जब कष्ट अंदर से हो रहा है। ऐसे ही जब तक अंतरंग के शत्रु जीवित हैं और वे निरंतर हमारे ऊपर प्रहार कर रहे हैं वे अपने कार्य करने में सक्रिय हैं तब तक बाहर के मित्र हमारा क्या करेंगे?

मित्र अंदर में भी हैं, वे अंदर में हमारा साथ दे सकते हैं। पहले हम समझें कि अंदर के शत्रु कौन हैं? शत्रु समझ में आ जायें तो पुनः मित्रों की खोज की जाये। केवल चार शत्रुओं की चर्चा करते हैं। सबसे पहली बात **मस्तिष्क का शत्रु है 'अभिमान/अहंकार'** ज्यों ही बुद्धि में अहंकार आता है सम्पूर्ण श्रुत ज्ञान जहर बन जाता है। वे शास्त्र की बातें उसके लिये उत्थान की नहीं, पतन की कारण बन जाती हैं। जैसे ही अहंकार आता है, उसके आवेग में व्यक्ति अंधा हो जाता है, उसके ज्ञान पर पर्दा पड़ जाता है और वह पतितोन्मुखी हो जाता है।

राजा यम का नाम आपने सुना होगा। वे बड़े बुद्धिमान और शास्त्रज्ञ थे। एक दिन उसकी राजधानी में पाँच सौ मुनियों का संघ आया। संघ के आचार्य थे महामुनि सुधर्माचार्य। नगर के सभी लोग बड़े उत्साह के साथ उनके दर्शन-पूजन के लिये उनके पास पहुँचे। उन्हें जाते हुए देख राजा ने भी अपने पाण्डित्य के अभिमान में आकर मुनियों की निंदा करते हुए कहा कि इनसे ज्यादा ज्ञानी तो मैं हूँ और इसी निंदा तथा ज्ञान का अभिमान करने से उसी समय उसके ऐसा कर्मों का उदय आया कि उनकी सब बुद्धि नष्ट हो गई, सारा श्रुत ज्ञान लुप्त हो गया वे महामूर्ख बन गये बाद में जब उन्हें अपने कृत कर्मों का बहुत पश्चाताप हुआ तब वे मुनि हो गये लेकिन तब भी उन्हें पंचनमस्कार मंत्र भी याद नहीं हो पाया।

इसलिये जो उत्तम पुरुष हैं और ज्ञानी बनना चाहते हैं, उन्हें उचित है कि वे कभी ज्ञान का गर्व न करें क्योंकि ये अभिमान हमारा बहुत बड़ा शत्रु है और अभिमान सदा ही दुःखदायी है।

दिन-रात मस्तिष्क की मेहनत करके आपने शब्दज्ञान संग्रहित किया किंतु उसके साथ अहंकार घुस गया। वह अहंकार मित्र की पोशाक पहनकर घुस गया और उस अमृत रूपी शब्द ज्ञान को जहर बना दिया। यह अभिमान ही मस्तिष्क का शत्रु है। मस्तिष्क में आया अहंकार शब्दों के साथ आ गया और कई बार आश्चर्य यह होता है कि मस्तिष्क में शब्द ज्ञान नहीं था तब भी ये अहंकार बिना छेद के घुस जाता है। शब्दों के लिये तो कान चाहिये तब कान के पर्दे में से छन कर के मस्तिष्क में जाते हैं किंतु अहंकार के लिये कान की भी आवश्यकता नहीं, रोम छिद्र की भी आवश्यकता नहीं वह कहीं से भी घुस जाता है। ये शत्रु ऐसे हैं जो अदृश्य रूप से घुस जाते हैं।

अगला हमारे **नेत्र का शत्रु है 'वासना'**। हमारे नेत्र बहुत अच्छे ही क्यों न हों गर आँखों में वासना घुस गयी तो ये आँखें तुम्हारे लिये अभिशाप हैं। आश्चर्य की बात तो ये है कि नेत्र बंद हों फिर भी यह वासना घुस जाती है। बाहर का दृश्य देखने के लिये तो आँखें खोलनी पड़ती हैं किन्तु वासना तो बंद आँखों में समा सकती है, इतना ही नहीं वह वासना अंतरंग में वास अर्थात् बदबू देती है। वह वासना बुद्धि को, हमारे जीवन को तहस-नहस कर देती है।

तीसरा शत्रु है 'तृष्णा' जो हृदय में बैठता है
''तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही''।

यह तृष्णा वह नागिन है जब डंसती है तो व्यक्ति होश में भी नहीं आ पाता बेहोश हो जाता है। तृष्णा के कारण वह अपना स्वभाव गुण धर्म सब भूल जाता है। यह तृष्णा वस्तु प्राप्त हो जाये तब भी बढ़ती है और वस्तु प्राप्त नहीं हो तब भी बढ़ती है। कहा भी है-

इच्छति शती सहस्रं सहस्रवान् लक्षमीहते कर्तुम्।
लक्षाधिपश्य राज्यं राज्ये सति सकलचक्रवर्तित्वम्॥

सौ का धनी हजार की इच्छा करता है, हजार का धनी लाख प्राप्त करना चाहता है, लखपति राज्य चाहता है और राज्य पूर्ण होने पर पूर्ण चक्रवर्तीपने की इच्छा करता है।

तृष्णा का जन्म प्राप्ति पर भी होता है और अप्राप्ति पर भी होता है। खेत में तो अंकुर पैदा तब होता है जब बीज डाला जाये किंतु तृष्णा का अंकुर चाहे कोई लाभ नहीं हो फिर भी लोभ जन्म ले लेता है और लोभ तृष्णा के साथ आता है। लोभ-तृष्णा का साथ तो चोली-दामन जैसा है, चंद्रमा और उसकी चांदनी के जैसा है। तृष्णा लाभ के साथ बढ़ती है और कहीं घाटा हो गया हानि हो गयी तब भी तृष्णा बढ़ती चली जाती है।

एक बार की बात है-सेठ जी उदास बैठे थे। तभी एक मित्र आया और उन्हें उदास देखकर उनकी उदासी का कारण पूछा-सेठ जी बोले 'क्या कहूँ एक लाख का नुकसान हो गया है'। मित्र बोला-वह कैसे? सेठ बोले-मैंने चने की एक हजार बोरी 2200/- के भाव से खरीदी थी और 2350/- के भाव से बेच दीं और अब उसके भाव 2450/- हो गए है। सेठ जी की लोभवृत्ति एवं असंतोष के कारण डेढ़ लाख का फायदा होते हुए भी एक लाख का नुकसान ही दिखाई दे रहा है।

चौथा शत्रु है 'बेईमानी' जो नाभि स्थान पर बैठता है। लोग कहते हैं बेईमानी और बीमारी पेट से आती है। यदि उदर में उदारता नहीं तो बेईमानी और बीमारी दोनों समा जायेंगी। उदारता यदि उदर में हो तो परिचय ईमानदारी का ही दोगे बेईमानी आ नहीं पायेगी। उदारता है तो बाँटकर खाओगे कभी कब्ज नहीं होगा पेट की बीमारी नहीं आयेगी। ये चार शत्रु हैं जिनके चार घर हैं। मस्तिष्क, नेत्र, हृदय और नाभि क्रमशः अहंकार, वासना, तृष्णा और बेईमानी के घर हैं।

महानुभाव! इन चार शत्रुओं से कैसे बचा जाये तो अपने चार विश्वस्त व्यक्तियों को खड़ा कर दो। पहले बड़े-बड़े महल होते थे उसके चार बड़े-बड़े दरवाजे होते थे, एक-एक दरवाजे पर एक-एक सुभट को खड़ा कर दिया जिससे यदि शत्रु सेना आ जाये तो वे द्वार की रक्षा कर सकें। ऐसे ही आत्मा को अपने इन चार शत्रुओं से निपटने के लिये चार मित्रों को खडा कर देना चाहिए।

पहला जो मस्तिष्क में खड़ा होकर अहंकार को नहीं आने दे, वह है विनयभाव। झुकना सीखो, जितने बड़े होते जाओ उतना झुकते जाओ। एक बार आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज से किसी ने पूछा-''महाराज जी आपका परिचय क्या है''? यद्यपि आचार्य श्री इस युग के मुनिधर्म के सबसे बड़े साधु थे फिर भी इन्होंने अपना परिचय दिया-''भैया! ढाईद्वीप के तीन कम नौ करोड़ मुनियों में मेरा नम्बर अन्तिम है, मैं सबसे छोटा साधु हूँ। यही मेरा असली परिचय है''।

महानुभाव! जो जितना झुकता चला जा रहा है समझो उतना ही समृद्ध होता जा रहा है। वृक्ष जितना फलित होता है उतना झुकता चला जाता है। दूसरों का सम्मान करना सीखो, उनके प्रति मधुर शब्द बोलना सीखो, उनकी बातों को ध्यान से देखो, सुनो और समझो। ये विनय भाव अहंकार को आने नहीं देता। जिसके मस्तिष्क में विनय का दृढ़ कपाट है उसमें अहंकार प्रवेश नहीं कर सकता।

आँखों का वह मित्र जो उसमें वासना रूपी दूती को न घुसने दे, वह है शर्म/लाज। जिसकी आँखों में शर्म होगी तो वह वासना का शिकार नहीं हो पायेगा, वह मर्यादा का उल्लंघन नहीं करेगा। वासना चुडैल है, पिशाचिनी है तो उसकी टक्कर लेने वाली है यह शर्म।

पुनः तीसरा शत्रु जो हृदय में प्रवेश करता है वह है तृष्णा। यह ऐसी अग्नि है जो सब कुछ जलाकर स्वाहा कर दे। इससे बचने के लिये, जो इसे रोकने में समर्थ है वह है संतोष के साथ रहने वाली दया। यदि चित्त में दया रहती है, संतोष वृत्ति रहती है तो वह तृष्णा को घुसने नहीं देती। एक बार गणेश प्रसाद वर्णी जी कटनी से जबलपुर आने के लिये स्टेशन पर पहुँचे वहाँ उन्होंने एक बुड्ढ़े ब्राह्मण को सत्तू का लोंदा बनाये बैठा देखा उन्होंने बाबा से कहा कि आप ये सत्तू क्यों नहीं खाते? वह बोला-भैया मेरे पास पानी नहीं है। उन्होंने कहा नल से ले आओ वह बोला नल बन्द हो गया है। वर्णी जी ने कहा कूप से ले आओ वह बोले डोरी नहीं है। उन्होंने कहा इस तरफ का नल खुला

हुआ होगा, वहाँ से ले आओ। ब्राह्मण ने कहा सत्तू छोड़कर कैसे जाऊँ वर्णी जी बोले मैं आपके सामान की रक्षा करूँगा आप जाइये जल ले आइये। वह गया पर खाली ही लौटकर आ गया क्योंकि वहाँ भी पानी नहीं मिला। तब वर्णी जी ने कहा कि मेरे कमण्डल में पानी है जो स्वच्छ है और आपके पीने योग्य है उसने प्रसन्नतापूर्वक जल ले लिया और कहने लगा कि यदि भारत वर्ष में सभी प्राणियों के हृदय में यह भाव, यह सन्तोष वृत्ति यह दया का भाव हो जावे तो इस देश का उत्थान अनायास ही हो जावे। 'नहीं-चाहिये' मेरे पास पर्याप्त है, अथवा जो मेरे पास है वह पर्याप्त से भी ज्यादा है, मैं इसमें से भी दूसरों को देने की भावना रखता हूँ यह भावना तृष्णा को घुसने नहीं देती।

चौथा सदन नाभिकेन्द्र जहाँ बेईमानी चली जाती है, बदनीयत वह बीमारी है उसके लिये नियत कर दो ईमानदारी को। बीमारी को रोकने के लिये आरोग्य लाभ है। आरोग्य लाभ से आशय है जब उदर में शुद्ध भोजन पहुँचेगा वह स्वयं ही औषधिरूप कार्य करता है। ईमानदारी के विचार नाभिकेन्द्र से निष्पन्न हों, ये झरना जब भी फूटे तो ईमानदारी का जल निकले। श्वँास जब ऊपर जाये तो शुद्ध ही जाये, उस शुद्ध आहार की गंध बाहर निकले। इसमें अभक्ष्य आहार, असद्भावनाओं का भोजन न पहुँचे, इसमें किसी की क्रूर भावना न पहुँचे, किसी की चीख-पुकार न पहुँचे, सदैव शुद्ध भावना पहुँचे। अतः शुद्ध आहार लें जिससे आरोग्य लाभ रहेगा और जब ईमानदारी पहरे पर रहेगी तो बेईमानी वहाँ पर फटकेगी भी नहीं।

महानुभाव! ये चार चीजे हैं जीवन में जो शत्रुओं से बचा सकती हैं। हमारे मित्र हमें छोड़कर के न जायें इसके लिये इन चार सदनों में इन चार की स्थापना कर दो जिसके सहारे तुम्हारे चार मित्र बने रहेंगे। मस्तिष्क में सिद्ध परमेष्ठी का ध्यान रखो, जो सर्वकर्मों से रहित हैं, जो लोकाग्र पर निवास करते हैं। ऐसे ही अपने शरीर के अग्र भाग मस्तिष्क पर सिद्धों का ध्यान लगाओ, उस अमूर्त परमात्मा का चिंतन करो जो भवातीत, देहातीत अरूपी निर्मल अविकारी है। तब विनय का भाव वहाँ स्थायी हो जायेगा कहीं नहीं जायेगा।

आँखों में शर्म बनी रहे, वासना नहीं आये इसमें अरिहंतों का चित्र स्थापित कर दो। अर्हद् भक्ति अंदर रहेगी तो वासना नहीं आयेगी आप पढ़ते हैं-**अर्हद्भक्ति सदा मन आने, सो जन विषय कषाय न जाने।**

जिसकी आँखों में अरिहंत प्रभु की मूर्ति विराजमान रहती है उसकी आँखों में विषय कषाय रूपी पाप वृत्तियाँ नहीं आती। अर्हत् बिम्ब का प्रकाश वासना के बिम्ब को पास में नहीं आने देगा। अगली बात-हृदय में विराजमान करें धर्म को। धर्म की स्थापना के साथ ही हृदय में तृष्णा का वेग नहीं आ पायेगा। संतोषवृत्ति वहाँ से जायेगी नहीं दया वही रहेगी दया ही धर्म है। नाभि कमल में स्थापना करें आचार्य उपाध्याय साधु की। आचार्य भगवन् आचरण के देवता कहलाते हैं, जिन्हें देखकर हमें आचरण के विचार आते हैं, उपाध्याय वे कहलाते हैं जो सद्ज्ञान की प्रेरणा देने वाले होते हैं जिनके स्मरण मात्र से हमारे ज्ञान का क्षयोपशम बढ़ने लगता है। साधु वे हैं जो साधनारत रहते हैं हमें पापों से बचाकर सद्राह पर ले जाते हैं, वे जो सदाचार की प्रेरणा देने वाले होते हैं। ये तीनों ही धर्ममूर्ति, संयम मूर्ति, ज्ञानमूर्ति, तपमूर्ति यदि हमारे नाभि निलय में स्थापित हैं तो कभी बेईमानी वहाँ आ नहीं सकती।

महानुभाव! ये चार शत्रु हमारे जीवन में हानिकारक हैं, हमारे चार पनों को खराब करने वाले हैं चार गतियों में भ्रमण कराने वाले हैं, चारों कषायों को पाँचों पापों को आमंत्रित कर लेते हैं इसलिये इनसे बचने के लिये चार मित्रों का सहारा लेना है और चारों आराध्यों को छोड़ना नहीं है ये चारों आराध्य ही हमारी आत्मा को आराध्य बनाने वाले हैं, इन चारों की आराधना करके हम भी आराध्य बन सकते हैं। आराधक से ही आराध्य बना जाता है, भक्ति से ही भगवान बनते हैं, भक्त ही भगवान बनता है, आप भी ऐसे ही बनें। इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान की जय।।

जीवन के छः आयाम

महानुभाव! प्रत्येक प्राणी का जीवन नदी की तरह से गतिशील है, बहती हुयी नदी कभी मरूथल में से बहती हुयी जाती है तो कभी किसी शहर के निकट से होती हुयी बहती जाती है, कभी वह बहती हुयी नदी उद्यानों की पंक्ति के समूह से निकलती जाती है तो कभी वह नदी छोटे-छोटे गाँव पर्वतों के पास से होती हुयी गुजरती है। हमारा जीवन भी कभी सुख की अनुभूति दिलाता है तो कभी दुःख की भयंकर पीड़ा। कभी हमारे जीवन में सुख के पुष्प खिलते हैं तो कभी दुःख के कांटे। कभी हमारा जीवन समधारा में बहता है तो कभी विषम। कभी ये जीवन ऊँचाईयों की तरफ ले जाता है तो कभी ढाल से पतन की ओर। हमारा जीवन कभी स्वयं के लिये वरदान बनता है तो कभी अभिशाप। कभी हमारा कोई प्रशंसक होता है तो कभी निंदक, कभी हमारे पास हमारे सहयोगी बहुत होते हैं तो कभी हम अकेले होते हैं।

महानुभाव! ये जीवन बहुरंगी है, जब जिस रंग पर फोकस पड़ जाये वही रंग चमकने लगता है। हरा, नीला, पीला, लाल आदि नाना रंग हैं जीवन में। यह जीवन कभी तो लगता है बहुत असुरक्षित है, तो कभी लगता है सुरक्षित है। जीवन को सुरक्षित बनाने के लिये आवश्यकता है कुछ ऐसे सूत्रों की जो हमारे लिये जीवन में ढाल की तरह से हों। हमारे जीवन के कुछ आयाम हों, कुछ ऐसे चरण हों जिनके अवलम्बन से हमारा जीवन न केवल सुखी अपितु बहुमूल्य व बहुउपयोगी भी बन सके।

दिशा मुख्य रूप से चार होती हैं पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर किन्तु अधोदिशा और ऊर्ध्वदिशा का भी समावेश करें तो छः दिशा होती हैं। कहीं से कोई हमारे ऊपर आक्रमण करता है तो वह किसी भी दिशा से कर सकता है यदि कोई व्यक्ति छः दिशाओं में ढाल लेकर खड़ा हो जाये, वह छः तरफ से अपनी सुरक्षा करे तो संभव है वह सुरक्षित रह सकता है। महानुभाव! जीवन के भी छः आयाम हैं जो जीवन को सुरक्षा प्रदान करने वाले हैं या यूँ कहें वे हमारे आत्मसुरक्षक हैं। अंगरक्षक तो केवल शरीर की रक्षा करते हैं पर ये आयाम आत्मा की रक्षा करने वाले हैं।

1. दर्पण सम चित्त वाला-यदि किसी व्यक्ति के सामने दर्पण रखा हो और वह दर्पण देखकर कहे कि मेरा चेहरा सबसे सुंदर है या कुरूप है तो वह दर्पण ऐसा कहने नहीं देगा। दर्पण किसी व्यक्ति को झूठ बोलने नहीं देगा क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण है जैसा है वैसा है। यदि कोई व्यक्ति दर्पण में दिख रहे श्याम वर्ण को धवल वर्ण कहे तब दर्पण प्रकट कर देगा, सबके सामने कहेगा तुम्हें दिखता नहीं, दर्पण झूठ नहीं बोलता जो श्याम दिख रहा है वह श्याम ही है, धवल दिख रहा है धवल ही है, जैसा दिख रहा है वैसा है।

विश्व प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात शक्ल से कुरूप थे। एक दिन अकेले बैठे वह शीशा हाथ में लिए अपना मुँह देख रहे थे। ऐसा करते देख उनका प्रिय शिष्य आश्चर्य चकित हुआ किन्तु वह कुछ बोला नहीं मात्र मुस्कुराने लगा। सुकरात शिष्य को मुस्कुराते हुए देखकर सब समझ गये और कुछ क्षण रुककर वे स्वयं बोले, वत्स! मैं समझ गया कि तुम क्यों मुस्कुरा रहे हो, शायद तुम सोच रहे हो कि मुझ जैसा कुरूप व्यक्ति आखिर शीशा क्यों देख रहा है?

शिष्य कुछ बोला नहीं, अपने मन का भाव जान मात्र सिर झुका लिया और शर्म से झुकी नजरों से जमीन की ओर देखने लगा। सुकरात

ने पुनः कहना शुरू किया वत्स! शायद तुम नहीं जानते कि मैं यह शीशा क्यों देखता हूँ? शिष्य ने कहा गुरुजी मैं नहीं जानता। वे बोले ''मैं कुरूप हूँ इसलिए हर रोज शीशा देखता हूँ'' सुकरात ने अपने शिष्य को अपने पास बैठाया और स्नेह से समझाते हुए बोले शीशा देखकर मुझे अपनी कुरूपता का भान हो जाता है। इससे मैं अपने रूप को जानता हूँ और कोशिश करता हूँ कि ऐसे अच्छे काम करूँ, जिससे मेरी यह कुरूपता ढक जाये। आगे समझाकर बोले सुन्दर लोगों को भी शीशा देखना चाहिए बल्कि अवश्य देखना चाहिए जिससे उन्हें ध्यान रहे कि वे जितने सुंदर देखने में लगते हैं उन्हें उस अनुरूप सुन्दर कार्य भी करना चाहिए और यदि वे लोग ऐसा नहीं करते हैं तो उनके बुरे कार्य उनकी बुरी आदतें उनकी इस शरीर की सुंदरता को कुरूप बना देंगी।

विश्व में कहीं का भी, कोई भी दर्पण हो वह कभी झूठ नहीं बोलता। कोई कहे मेरे घर का दर्पण अलग है, तेरे घर में अलग होगा तो ऐसा भी नहीं होता। दर्पण तो दर्पण होता है। दर्पण बना भी कैसे? जिसने अपने दर्द को खत्म कर दिया उसका चित्त दर्पण जैसा हो गया। दर्पण को आदर्श भी कहते हैं। इसे शीशा भी कहते हैं जो चाहे कितनी ही अनुकूलता-प्रतिकूलता में कभी पिघलता नहीं एक जैसा ही रहता है क्योंकि शीशा बड़ी कठोर धातु होती है किन्तु उसे कुछ लोग शीशा शब्द कहते हैं क्योंकि ये इतना निष्ठुर होता है, किसी के प्रति करुणा का भाव नहीं रखता। ज्यों की त्यों कहता है इससे बड़ा न्यायप्रिय और कहीं नहीं मिलेगा। पंचपरमेष्ठियों को भी दर्पण की उपमा दी गयी हैं, पंचपरमेष्ठी के सामने आपको अपना रूप जैसा दिखाई देता है समझ लेना आप लोगों का वही रूप है आपके अंदर का वही स्वरूप है।

दर्पण जैसे आपको बाह्य पुद्गल के बारे में झूठ नहीं बोलने देता वैसे ही आध्यात्मिक दृष्टि वाले संत या आत्मा के वैभव को प्राप्त कर चुके ऐसे अरिहंत या कर्मों से रहित सिद्ध परमेष्ठी, आचार्य-उपाध्याय-साधु

इनके समक्ष कोई भी भव्य जीव पहुँचता है तो उनके चित्त के दर्पण में आत्मा का स्वरूप झलकने लगता है। जैसे भगवान के भामण्डल में भव्य जीवों को अपने सात भव दिखाई देते हैं तीन पीछे के, तीन आगे के और एक वर्तमान का। वह भव जैसा है वैसा दिखाई देता है उसे कोई छिपाने की कोशिश करे तो छिपा नहीं सकता। प्रत्यक्ष ज्ञानी से कोई अपने पूर्वभव छिपाना चाहे तो छिपा नहीं सकते।

जिनका चित्त दर्पण की तरह से हो गया है वे कभी झूठ नहीं बोलते, जैसे पानी में परछाई ज्यों की त्यों दिखाई देती है उसी प्रकार दर्पण में भी ज्यों का त्यों दिखाई देता है। वह सबको ज्यों का त्यों दिखाकर भी मलिन नहीं होता। दर्पण में अग्नि जलती दिखाई देती है किन्तु उस जलती हुयी अग्नि को दिखाकर भी दर्पण जलेगा नही वह दूर से ही अग्नि को दिखा रहा है, दर्पण गर्म भी नहीं होगा, दर्पण में बारिश दिखाई दे रही है दर्पण भीगेगा भी नहीं, चाहे धूल उड़ रही हो किन्तु दर्पण उससे गंदा भी नहीं होगा, चाहे कीचड़ गिर रही है उससे मलिन नहीं होगा, चाहे कोई पुष्पवृष्टि कर रहा हो दर्पण सुगंधित नहीं होगा क्योंकि दर्पण-दर्पण है। दर्पणवत् जिनका चित्त है वे तो स्वयं निर्मल हैं हीं किंतु जो उनके समीप भी पहुँच गये वे झूठ नहीं बोल सकते, अपने आप से झूठ नहीं बोल सकते। भगवान् के पास बैठकर भव्य जीव को अपना पुण्य-पाप दिखाई देता है। मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ, कैसा हूँ, मैं कब तक हूँ, मेरा क्या स्वरूप है सब कुछ दिखाई देता है। यदि वह व्यक्ति पुनः मोह के द्वारा पकड़ा जाये तो मोह दबाकर उससे कुछ भी कहलवा सकता है, जब दर्पण के सामने शांत चित्त बैठा है, कषायों का उबाल नहीं आ रहा, तब तक उसे सब कुछ दिखाई दे रहा है। उबलते पानी में अपना चेहरा साफ दिखाई नहीं देगा शांत जल में अपना चेहरा दिखायी देता है।

दर्पण कभी झूठ नहीं बोलने देता, तुम जब-जब झूठ बोलोगे तब-तब वह कहेगा यह मिथ्या है तुम ठीक नहीं बोल रहे। फिर तुम

अपने चित्त को दर्पण बनाकर देखोगे तो तुम झूठ कह नहीं पाओगे। बाहर का दर्पण बाहर के चेहरे के बारे में, बाहर की वस्तु के बारे में जैसा है वैसा ही दिखाता है, ज्यों का त्यों दिखाता है वह कभी झूठ नहीं बोलता। और दर्पण जैसे चित्त वाले व्यक्ति कभी झूठ नहीं बोलते। अगला आयाम है–

2. तत्त्वज्ञान–जिस व्यक्ति के जीवन में तत्त्वज्ञान हो गया, जिस व्यक्ति को सम्यक्ज्ञान हो गया, जिस व्यक्ति को आत्मज्ञान हो गया, स्वभाव ज्ञान हो गया, जाना ही नहीं मान भी गया है, वह व्यक्ति अब भयभीत नहीं होता, उसे अब किस बात का डर? अग्नि जलाती है, पानी ठंडा होता है, यदि पानी अग्नि में चला जाये तो अग्नि को बुझा देगा वह ज्ञान में जान रहा है। जिस व्यक्ति का जन्म हुआ है उसकी मृत्यु होगी, ज्ञान जानता है इस पर्याय का परिणमन ऐसे हो रहा है। जब जान रहा है तब भय नहीं रहेगा, भय तो तब आता है जब कोई चीज अचानक आ जाये या कोई असंभव जैसी बात आ जाये, अनहोनी जैसी कोई घटना घटने लगे, तब उसे भय होता है।

तत्त्वज्ञान विहीनानां दुःखमेव हि शाश्वतं

जो व्यक्ति तत्त्वज्ञान से रहित होते हैं उनके जीवन में शाश्वत दुःख ही दुःख है। तत्त्वज्ञान को प्राप्त किये बिना कोई सुख को प्राप्त नहीं कर सकता। तत्त्वज्ञान से विहीन एक पर्याय के नष्ट होने पर दुःखी होगा, दूसरे के नष्ट होने पर भी दुःखी होगा, उसे कौन सुखी कर सकता है? किन्तु तत्त्वज्ञान ऐसा दीपक है, ऐसी ज्योति है जिस आत्मा में वह ज्योति जल जाती है उस व्यक्ति को दुःखी कर पाना असंभव है। जो व्यक्ति नहीं जानता है, वह तो कह सकता है मिर्ची मीठी होती है, मिश्री कड़वी और चरचरी होती है किंतु जो जानता है वह कहेगा नहीं, जिसका जैसा स्वभाव है वैसा है।

एक छोटे से भोले-भाले बालक के पास बहुत सुन्दर मिट्टी का खिलौना था। बालक को उस खिलौने से बहुत प्यार था। एक दिन वह खिलौना हाथ से छूट कर टूट गया। बालक रोने लगा, समीप ही उसके माता-पिता खड़े थे, वे यह सब देख मुस्कुरा रहे थे क्योंकि वे जानते थे कि खिलौना मिट्टी का है, टूटना इसका स्वभाव है। पर बालक इस स्वभाव को नहीं जानता है, इसलिए रो रहा है। बालक अज्ञान के कारण, स्वभाव न जानने के कारण दुखी था, उसके माता-पिता ज्ञानी थे, वे स्वभाव को जानते थे इसलिए दुखी नहीं थे।

महानुभाव! तत्त्वज्ञान से विहीन व्यक्ति पर्याय को स्थायी मानता है, द्रव्य को भूल जाता है। तत्त्वज्ञानी व्यक्ति द्रव्य को द्रव्य मानता है, गुण को गुण मानता है, पर्याय को पर्याय मानता है उसे भ्रमित नहीं किया जा सकता। इसलिये आचार्य अजितसेन सूरी जी ने छत्रचूड़ामणी ग्रंथ में लिखा-

तत्त्वज्ञान हि जीवानाम् लोकद्वये सुखावहम्

जीव के लिये तत्त्वज्ञान ही एक ऐसी चीज है जो दोनों लोकों में सुख देने वाला है। तत्त्वज्ञान के सिवाय अन्य कोई वस्तु जीव को सुख नहीं दे सकती। तत्त्वज्ञान ही आत्मा को तृप्त करता है। तत्त्वज्ञान ही इस आत्मा के खालीपन को भरता है, तत्त्वज्ञान में ही संतुष्टि और तृप्ति है इसलिये तत्त्वज्ञान में रमण करना चाहिये। आगे कहा-

3. आध्यात्मिक धारा-जीवन में यदि आध्यात्मिक धारा आ गयी, तो वह धारा नदी की एक ऐसी धारा है जिससे चित्त की भूमि पर जमा हुआ कीचड़ धूल जाता है। नदी की धारा जब बहती है तब धूल के कण टिक नहीं पाते, यहाँ तक की पत्थर भी लुढकते चले जाते हैं, रास्ता साफ होता चला जाता है। आध्यात्मिक धारा बहते ही बस व्यक्ति का मोह धुल जाता है। आध्यात्मिक वृत्ति जीव को मोही नहीं बनने

देती। मोह की परिभाषा है, अपने स्वरूप को भूलकर पर स्वरूप को अपना मान लेना, यह मोह है। और आध्यात्मिक धारा है अपने को अपना मानना, पर को पर मानना। आध्यात्मिक व्यक्ति कभी भी दु:खी नहीं हो सकता। जो मोही है वह कभी आध्यात्मिक नहीं हो सकता दोनों एक साथ नहीं चल सकते।

कोई कहे पानी और अग्नि एक साथ चल रहे हैं, दोनों एक ही कुण्ड में कैसे स्थान प्राप्त कर सकते हैं पानी है तो अग्नि नहीं है अग्नि है तो पानी नहीं। आप कहें कि हमने पानी में जलता दीया रख दिया, तो वह दीपक जल तो रहा है पर वह पानी से अलग है इसलिये आध्यात्मिक वृत्ति वाला व्यक्ति कभी मोही नहीं हो सकता। आगे कहा

4. सत्य-जिस व्यक्ति में सत्य जाग्रत हो गया है, सत्य के साथ चलने वाला व्यक्ति कभी कमजोर नहीं होता। उसे किसी प्रकार का भय नहीं लगता, वह सोचता है मेरे पास तो तीन लोक की अदम्य-अचिंत्य शक्ति है मुझे किस बात की कमजोरी। जब सत्य मेरे पास है, मेरे प्राणों में सत्य का वास है, तब फिर मुझे किसी बात की परवाह नहीं। जो व्यक्ति मिथ्या- झूठ के सहारे चलते हैं, वे सदैव आकस्मिक भयों से ग्रसित रहते हैं। सत्यवादी तो कहता है मुझे सत्य के रहते कुछ भी हो जाये परवाह नहीं। सत्य निर्भीक होता है, उसको दु:ख-दर्द नहीं होता वह सत्य अखण्ड होता है।

5. विश्वास-जिसके पास विश्वास होता है वह व्यक्ति विश्वास के माध्यम से अपनी शक्ति को प्रकट करता है। वह समग्र सुख को प्राप्त करने में समर्थ रहता है। जिसका विश्वास कमजोर हो गया, समझो कुछ बचा नहीं ''विश्वासं फल दायकम्' विश्वास के माध्यम से ही व्यक्ति सफलता को प्राप्त करता है। विश्वास के माध्यम से ही व्यक्ति आगे बढ़ता है, उसकी शक्तियों का विकास होता है और जब विश्वास नहीं होता तो समझो सब चला गया।

6. उद्यम/परिश्रम/कर्म–जो व्यक्ति कर्म करता है वह नि:संदेह मंजिल तक पहुँचता है। चाहे कोई कितना ही शक्तिशाली हो, यदि वह व्यक्ति कर्म नहीं करता परिश्रम नहीं करता, उद्यमशील नहीं है पुरुषार्थी नहीं है तो वह सफलता को प्राप्त नहीं कर सकता। किंतु जो पुरुषार्थी है, उद्यमशील है कर्म करने वाला है ऐसा व्यक्ति हमेशा सफलता को प्राप्त करता है। या यूँ कहें पुरुषार्थी के जीवन में सफलता ऐसे ही रहती है जैसे पुष्प के साथ गंध, उसके जीवन में प्रकाश ऐसे होता है जैसे सूर्य में प्रकाश। उस पुरुषार्थी का जीवन ऐसे ही सुगंधित, प्रकाशित व सुखद होता है। उसका जीवन मंजिल के करीब होता है इसके विपरीत जो पुरुषार्थ करने से जी चुराते हैं वे व्यक्ति कभी जीवन में सफलता का मुँह भी नहीं देख पाते।

महानुभाव! आपने महान् वैज्ञानिक एवं गणितज्ञ आइंस्टीन का नाम सुना होगा। जब वे स्कूल में पढ़ते थे तब अपनी कक्षा में गणित के विषय के सबसे कमजोर विद्यार्थी थे। बच्चे उन्हें बुद्धू कहकर चिढ़ाते थे। कभी-कभी तो चिट पर बुद्धू लिखकर उनके पीछे चिपका देते पर इतना होने पर भी आइंस्टीन चिढ़ता नहीं था हर समय गणित सीखने का पुरुषार्थ करता था। एक बार अध्यापक ने एक सवाल को कई बार समझाया और फिर आइंस्टीन को खड़ा करके उनसे वही सवाल हल करने के लिये कहा तो आइंस्टीन जबाब न दे पाया और बच्चों की तरफ तांकता रहा तब अध्यापक ने गुस्से में आकर कहा तुम सात जन्मों में भी गणित नहीं सीख सकते गणित छोड़कर कोई और विषय सीखो। यह बात आइंस्टीन को चुभ गई उसने कठोर परिश्रम किया फलस्वरूप यह बहुत बड़ा गणितज्ञ बन गया। सच है पुरुषार्थ व लगन से किस कार्य की सिद्धि नहीं होती।

सफलता उन व्यक्तियों के लिये है जो उद्यमशील हैं। जो सब कुछ करने को तैयार हैं। सफलता उनके लिये है जो मन वचन काय

को संयमित करके सम्यक् पुरुषार्थ करते हैं। सफलता उनके लिये नहीं जो आलस के आगोश में पडे रहते हैं, सफलता उनके लिये भी नहीं है जो सफलता को भीख में, भेंट में, वसीयत में या प्रार्थना में मांगना चाहते हैं, सफलता तो पुरुषार्थ करने पर मिलती है, बिना पुरुषार्थ किये तो मुंह के अंदर रखा ग्रास भी अंदर नहीं जाता।

पश्य कर्मवशात् प्राप्तं भोज्य-काले च भोजनं।
हस्तोद्यमं विना वक्त्रे प्रविशेन् न कथञ्चन॥

देखो! कर्म के उदय से भोजन के समय जो भोजन प्राप्त होता है वह भी बिना हाथ के उद्यम से किसी भी तरह मुख में प्रवेश नहीं कर सकता है।

बिना किये कुछ नहीं होगा इसलिये पुरुषार्थ करना परमावश्यक है। ये छः बातें आपके जीवन में वह ढाल बन सकती हैं जो आपको सब प्रकार से बचाने वाली हैं, जो सुखद जीवन का आयाम हैं। ये सभी बातें आपके जीवन में घटित हों, इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....।।

॥श्री शांतिनाथ भगवान की जय॥

महानुभाव! जीवन संयोग और वियोगों का समूह है। जीवन परिवर्तनों का नाम है, जीवन सक्रिय अवस्था है, जिसमें सब कुछ सक्रिय दिखायी देता है। जो कुछ भी हमारे पास उपलब्ध है वह सब सक्रिय है, परिवर्तनशील है, चाहे हमारा मन हो, वचन हों या तन हो। चाहे साधन सामग्री हो, धन-वैभव जो कुछ भी दिखायी देता है सब सक्रिय दिखायी देता है। प्रत्येक वस्तु में क्षण-क्षण में परिवर्तन हो रहा है, सक्रियता दोनों अवस्थाओं में होती है चाहे जीवन उत्थान की ओर जा रहा हो या पतन की ओर जा रहा हो। जैसे कोई व्यक्ति सीढ़ी पर चढ़ रहा है तब भी सक्रिय है, उतर रहा है तब भी सक्रिय है। बॉल किसी सीधी दिशा में जा रही है तब भी सक्रिय है, आ रही है तब भी सक्रिय है।

जीव कूटस्थ नहीं होता कोई द्रव्य कूटस्थ नहीं होता, प्रत्येक द्रव्य में परिणमन होता है उसके गुणों में परिणमन होता है और परिणमन का नाम ही पर्याय है। एक साथ किसी द्रव्य की दो पर्याय नहीं होती, एक साथ किसी गुण की दो पर्याय नहीं होती और कभी ऐसा समय भी नहीं आता कि उसकी एक भी पर्याय न हो। क्रम निरन्तर चलता ही रहता है। पर्याय और गुण इन दोनों का समूह ही द्रव्य है। यद्यपि पर्याय गुणों की भी होती है, द्रव्य की भी अगल से पर्याय होती है। परिणमन कुछ अपने आप होते हैं, कुछ करने से होते हैं जैसे जल का बहाव नीचे की ओर स्वतः होता है ऊपर की ओर पुरुषार्थ से किया जाता है।

अनादिकाल के संस्कारवशात् हमारे मन-वचन और काय में जो परिणमन चल रहा है वह संसार परिभ्रमण का कारण भूत है। पुरुषार्थ पूर्वक जो सम्यक् परिणमन किया जाता है वह परिणमन संसार के बंधनों को काटने वाला है, मोक्ष का मार्ग, कल्याण का मार्ग, शिवपथ अथवा आत्मा का शाश्वत वैभव प्राप्त करने का मार्ग है। व्यक्ति यदि जिसे बदलना है उसे बदलता है तब तो वह अपने सम्यक् लक्ष्य को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है किंतु जिसे नहीं बदलना होता है उसे बदलता रहता है तो सम्यक् लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती।

जिस प्रकार एक ड्राइवर मंजिल को प्राप्त करने के लिये अपनी गाड़ी को start करके चलता है, बहुत चलता चला गया, चलता चला गया वह अपनी मंजिल तक दो-चार घंटे में भी नहीं पहुँचा। वहीं दूसरा व्यक्ति उसी मंजिल पर, उसी प्रकार के वाहन से चला तो कुछ ही मिनटों में पहुँच गया। जब वह ड्राइवर नहीं पहुँचा, तब उसे रास्ते में जो भी पथिक/राहगीर मिले उनसे पूछा भाई! मेरी अमुक मंजिल है, मैं वहाँ तक क्यों नहीं पहुँच पाया, जबकि मेरे और साथी पहुँच गये। उन लोगों ने कहा तुम ऐसे नहीं पहुँचोगे, **'बदलो'**। गाड़ी में सेठ भी बैठा था, उसने भी बात सुनी-बदलो। सेठ ने ड्राइवर को नीचे उतार दिया और खुद ड्राइविंग करने लगा उसने ड्राइवर को बदल दिया। पुनः जवाब मिला-'बदलो' ऐसे नहीं पहुँचोगे उसने गेयर बदल दिया speed और बढ़ा दी। और आगे पहुँचे, पूछा मंजिल कितनी दूर है? ऐसे नही पहुँचोगे-'बदलो'। उसने सोचा शायद यह मुझसे गाड़ी बदलने की बात कहता है उसने उस गाड़ी को छोड़ा दूसरी गाड़ी ली, उसको चलाने लगा, वह व्यक्ति तब भी नहीं पहुँचा, तब भी मार्ग में पूछने पर जवाब मिला-'बदलो'।

व्यक्ति कहता है-मैंने ड्राइवर बदल दिया, मैंने गेयर बदल

दिया, मैंने गाड़ी की स्पीड बदल दी, मैंने गाड़ी भी बदल दी अब और क्या बदलना है? जवाब मिला-'रास्ता बदलो'। अभी जो वह कच्ची सड़क पर चल रहा था, उसे छोड़कर समतल भूमि में चलने लगा मंजिल फिर भी नहीं मिली, रास्ता ऊबड़ खाबड़ था। जंगल में गाय चराने वाले गोपालों से मिला-उन्होंने कहा-भाई! 'बदलो' ये तुम ठीक नहीं कर रहे। रास्ता बदलो-पुनः उसी रास्ते पर आ गया, आगे चला पुनः किसी ने वही कहा और रास्ता बदलो पुनः वह अच्छे हाईवे पर चलने लगा किंतु फिर भी पहुँच नहीं रहा है। अंत में हार मानकर गाड़ी से उतरकर आया पूछा मैं क्यों मंजिल तक नहीं पहुँच रहा-मुझे इतने घंटे लग गये जबकि मेरा साथी कुछ ही मिनटों में पहुँच गया। सबने कहा-'बदलो' मैं बदलता चला जा रहा हूँ सब कुछ बदल दिया ड्राइवर से लेकर उस गाड़ी के outlook तक को बदल दिया रास्ता तक बदल दिया अब क्या बदलना है? उन्होंने कहा-ये सब बदलना तो फिजूल का है तुम्हें बदलना है तो सिर्फ अपनी दिशा बदलना है। दिशा बदल दोगे तो तुम निःसंदेह अपनी मंजिल तक पहुँच जाओगे।

महानुभाव! संसारी प्राणी भी बदलता रहता है, पहले सोचता है धन प्राप्त करके सुखी हो जाऊँगा, सुख नहीं मिला, बदल दिया अपना लक्ष्य, अब सोचता है नौकर-चाकर रखकर सुखी होऊँगा, सुख तब भी न मिला, मित्रों को बदला, जीवन साथी को बदला, मकान को बदला यहाँ तक कि शहर को भी बदल दिया, अपना लिबास भी बदलता है, खानपान आदि सब कुछ बदलता जाता है किंतु उसे फिर भी कुछ हासिल नहीं हो पा रहा। सुख प्राप्त करना चाह रहा है फिर भी कुछ प्राप्त नहीं हो रहा जिसके लिये उसने अपनी चर्चा से लेकर चर्या तक बदल डाली पहले normal चर्या करता था अब तो योगा करना भी प्रारंभ कर दिया फिर भी कुछ भी सुख नहीं मिला। वह क्या बदले? कैसे बदले? पहले कठोर वचन

बोलता था अब विनम्र वचन बोलना प्रारंभ कर दिया, पहले मन का चिंतन कम करता था अब ज्यादा करने लगा तब भी सुख नहीं मिला अंत में मालूम चला सुख ऐसे नहीं मिलेगा।

हमें केवल योग को नहीं उपयोग को भी बदलना है। भोग को नहीं उपभोग को भी बदलना है। हमें बदलना है केवल इस देह को नहीं इस देहातीत आत्मा को भी। इसकी परिणति को भी बदलना है। भोग सामग्री के बदलने से शरीर में कुछ बदलाव आता है, उपभोग के बदलने से संभव है शरीर में ही नहीं, आदतों में भी बदलाव आता है, व्यवहार में, क्रिया कलाप में भी बदलाव आता है। योग के बदलने से संभव है पुण्य के स्थान पर पाप का, पाप के स्थान पर पुण्य का आश्रव किया जा सके किन्तु उपयोग के बदलने से हमारा मार्ग बदल जाता है। जब पहले अशुभ उपयोग था, मिथ्यात्व की दशा में तब हम संसार मार्ग में जीते थे, अब उपयोग में सम्यक्त्व आ गया, सम्यक्दृष्टि हो गये, शुभ उपयोग हो गया, शुद्धोपयोग हो गया, तब फिर मोक्षमार्गी हो गये।

महानुभाव! संसारी प्राणी प्रायःकर के भोगसामग्री या उपभोग सामग्री बदलता रहता है, ज्यादा से ज्यादा योग बदलता है, शरीर की क्रिया कलाप बदलता है, भाषा बदलता है, मन के विचारों को बदल देता है, किन्तु आत्मा की परिणति नहीं बदलता। **''दृष्टि के बदले बिना कभी सृष्टि भी बदली दिखायी नहीं देगी।''** सृष्टि कभी बदली नहीं जा सकती, सदैव दृष्टि को ही बदलना होता है। जब हम पूर्व की ओर दृष्टि करके देख रहे हैं तब पूर्व के सामने का दृश्य दिखाई दे रहा है, अब हम उस दृश्य को धक्का देकर के पीछे नहीं कर सकते, पीछे वाले दृश्य को आगे नहीं ला सकते। फिर क्या कर सकते हैं? हम अपने सिर को घुमालें जो दृष्टि हमारी पूर्व की ओर है वह पश्चिम की ओर हो जायेगी। दृष्टि घुमाते ही सामने जो हमें

कई मीलों का दृश्य दिखायी दे रहा है, जो पर्वतमालायें दिखायी दे रही हैं, दृष्टि बदलते ही अपार समुद्र दिखाई देने लगता है।

महानुभाव! समुद्र को खींचकर नहीं लाये, न ही पर्वतों को धक्का देकर पीछे किया हमने केवल अपनी दृष्टि बदली है। हमने अपनी दृष्टि बदली तो सृष्टि बदली-बदली दिखाई दी, हमने अपनी दिशा बदली तो हमारे जीवन की दशा बदलती दिखाई दी। हम उसे बदलें जिसे बदलना अत्यावश्यक है, उसे बदले बिना कुछ भी नहीं बदला जाता। लोग बदला लेने की ठान लेते हैं कि उसने मुझसे ऐसा-ऐसा कहा, उससे बदला लेना चाहते हैं, अपने आप को बदलना नहीं चाहते।

आज घरों में जो झगड़ा है सास-बहू का, पिता-पुत्र का, भाई-भाई का या मित्र-मित्र का जो भी झगड़े चल रहे हैं वह सब केवल इस बात के हैं कि वे सभी एक-दूसरे को बदलने की कोशिश कर रहे हैं, कोई भी अपने आप को बदलने को तैयार नहीं है। जब तक हम अपने आप को बदलने को तैयार न होंगे तब तक सामने वाला बदले या न बदले उससे तुम्हें क्या फर्क पड़ने वाला है। हमारे जीवन का शुभ-अशुभ तो हमारे बदलाव से है। हम यदि अपनी गाड़ी की दिशा बदल देते हैं, और अन्य गाड़ियाँ कहीं भी जाती रहें उन गाड़ियों के जाने से हमारी मंजिल में कोई फर्क नहीं पड़ता और गाड़ियों के बदल जाने से भी हमारी मंजिल में कोई फर्क नहीं पड़ता, जब तक हम अपनी गाड़ी की दिशा न बदलें तब तक हम बदल नहीं सकते। देखो! कई बार ये देखने में आता है कि जो व्यक्ति भोग बदलता रहता है, उपयोग नहीं बदलता, उसे उपयोग को बदले बिना जो संसार दुखित प्रतीत होता है, वह उपयोग बदलते ही सुखी लगने लगता है।

महानुभाव! पद्मपुराम का एक प्रसंग आपने सुना होगा राजकुमार वज्रबाहु के बारे में जिन्हें अपनी पत्नी से तीव्र राग था

जो एक पल भी उनके बिना रह नहीं सकता था, जो संसार-शरीर भोगों मे आसक्त था। एक समय उनकी पत्नी मनोदया का भाई उसे लेने आया तब पत्नी मोह के कारण वज्रबाहु भी अपने ससुराल चल देते हैं। रास्ते में वन, उपवन, पर्वतों व प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द लेते हुए जा रहे थे कि अचानक वज्रबाहु की दृष्टि तप करते हुए मुनिराज पर पड़ती है जो स्वर्ण से चमक रहे हैं, जिनका शरीर कृश हो गया है, जिनके मुख मण्डल पर अपार तेज है उस प्रसन्न मुद्रा को देखकर राजकुमार वज्रबाहु विचार करने लगता है कि अहो! इन मुनिराज को धन्य है जो परिग्रह का त्याग कर मोक्ष की अभिलाषा से तप कर रहे हैं।

ये आत्मकल्याण में लीन हैं, ये शत्रु-मित्र में तथा रत्नों की राशि और तृण में समान बुद्धि रखते हैं। इन्होंने इन्द्रिय और मन को वश में कर लिया है। ये वीतराग हैं, सिद्धिरूपी वधू का आलिंगन करने के लिए जिनकी लालसा बढ़ रही है, जिन्हें इन्द्रिय रूपी दुष्ट चोर ठग नहीं सकते, इन्होंने अपना मनुष्य जन्म सफल किया है और मैं तो कर्मरूपी पाशों से ऐसे वेष्टित हूँ जैसे आशीविष जाति के सर्पों से चन्दन का वृक्ष वेष्टित होता है। मैं भोग रूपी पर्वत की बड़ी गोल चट्टान के अग्र भाग पर बैठकर सो रहा हूँ, धिक्कार है मुझे।

अभी संसार में राग था तथा उपयोग बदला और उसी संसार से वैराग्य का भाव उत्पन्न हो गया विचार करने लगे कि अगर मैं भी मुनिराज बन जाऊँ तो मेरा ये मनुष्य भव सफल हो जावे। तभी उनके साले उदयसुन्दर ने मुस्कुराकर हँसी करते हुय कहा कि आप मुनिराज को बड़ी देर से देख रहे हो क्या दीक्षा लेने का विचार है? तब वज्रबाहु ने अपने भाव को छिपाते हुये पूछा कि उदय! तुम्हारा क्या भाव है वह बताओ। तब उदय जानते थे कि ये तो मेरी बहिन में आसक्त हैं दीक्षा नहीं लेंगे और हास्य में कह दिया कि यदि तुम

दीक्षा लोगे तो मैं भी तुम्हारा साथी होऊँगा। तभी वज्रबाहु ने अपने सारे आभूषण उतार दिये हाथी से उतरकर पर्वत पर चढ़ गये। सभी लोग रोने लगे उदयसुन्दर भी क्षमा मांगने लगे कि मैंने तो हास्य में कहा था, पर वज्रबाहु ने कहा कि तुम तो मेरे सच्चे मित्र हो मैं तो कुएँ में गिर रहा था तुमने तो मुझे निकाला है और तुम्हारी हँसी मेरे लिये अमृत के समान हो गयी, क्या हँसी में पी गयी औषधि रोग को नहीं हरती? हरती ही है और वज्रबाहु ने गुणसागर मुनिराज के पास जाकर विनय पूर्वक नमोस्तु कर कहा कि हे स्वामिन्! आपके प्रसाद से मेरा मन पवित्र हो गया अब मैं इस भयंकर संसार रूपी कारागृह से निकलना चाहता हूँ। यह सुनकर मुनिराज ने वज्रबाहु को जिन दीक्षा देकर उसका कल्याण किया।

महानुभाव! उपयोग बदला तो संसार से विरक्ति हो गयी मोह गलित हो गया, भोगों के प्रति आसक्ति समाप्त हो गयी और वज्रबाहु ने अपना कल्याण किया। ये देखकर उदयसुन्दर ने छब्बीस राजकुमारों सहित परमोत्साह से दीक्षा ले ली। वज्रबाहु के बाबा (विजय) को पता चला कि वज्रबाहु ने दीक्षा ले ली तो उन्हें शोक हुआ सोचा और उपयोग बदला कि अरे! मैं वृद्ध होकर भी भोगों के आधीन हो रहा हूँ मैं विषयों के द्वारा चिरकाल से ठगा गया हूँ उन्होंने भी अपने पोते पुरन्दर के लिये राज्य देकर निर्वाणघोष मुनिराज से दीक्षा ले ली और वज्रबाहु की पत्नी मनोदया ने भी दीक्षा को अंगीकार किया।

उपयोग बदले बिना जिसमें उसे आनंद आ रहा है, जब उपयोग की धारा बदलती है तब उसी संसार से उसे विरक्ति हो जाती है। उपयोग बदले बिना शरीर का पोषण करता है किंतु जब उपयोग बदल गया, उपयोग मिथ्यात्व से सम्यक् हो गया तो फिर उसी शरीर के प्रति विरक्त हो जाता है। उपयोग बदले बिना पहले संसार से राग था, अब संसार से वैराग्य हो गया। पहले भोगों में

आसक्ति थी, अब भोगों से विरक्ति हो गयी। उपयोग बदलते ही उसके जीवन की धारा ही बदल गयी। नदी की धारा बदलना भी बड़ा कठिन है, जो नदी समुद्र के किनारे पहुँच चुकी हो अब कोई चाहे उस नदी को मोड़कर दूसरी दिशा में ले जाये, तो व्यक्ति ले जा नहीं सकता। नहर और नाले को बदलना भी बड़ा मुश्किल है फिर जीवन को कैसे बदला जाये?

उपाय है, नदी को बदलने का भी और जीवन को बदलने का भी। नदी जहाँ से निकल रही है यदि उसी उद्‌गम स्थान से जब छोटी धारा के रूप में है तभी उसे दूसरी दिशा दे दी जाये तो नदी आगे बढती जायेगी, दूसरी दिशा में अपना रास्ता बना लेगी। ऐसे ही हम अपने जीवन की नदी को, अपने जीवन की धारा को बदल सकते हैं, प्रारंभ से, बाद में नहीं। छोटे वृक्ष को कैसा भी आकार दिया जा सकता है, सीधा भी वक्र भी, दांये झुके या बायें कैसा भी हो सकता है किन्तु कब? जब प्रारंभ से ही उसे मोड़ने का प्रयास करें तब। ऊँचाई पर पहुँचने पर, परिपक्वता होने पर उसे मोड़ना बड़ा मुश्किल है।

महानुभाव! हम भी अपने उपयोग की धारा को बदलें, हमने जब तक अपने जीवन में कोई दृढ़ संकल्प नहीं लिये, जब तक हमारा मन आक्रान्त नहीं हुआ है, जब तक हम किसी के प्रभाव में रंगे नहीं हैं, जब तक हम कठोर परिश्रम करने का साहस रखते हैं, जब तक हममें किसी लक्ष्य को प्राप्त करने की प्यास है, जब तक हम एक संकल्प के साथ जुड़े हुये हैं, जब तक हम अपने कदमों में गति रखते हैं तब तक ही हमें अपने जीवन की धारा को बदल लेना चाहिये। ये सब समाप्त हो जायेगा फिर बदलना मुश्किल है। दीपक जब जलना प्रारंभ करता है तब दीपक में बहुत सारा घी भरा है, उस ज्योति को बदल सकते हैं, दूसरी बाती डालकर उस पहली बाती को जो ठीक से नहीं जल रही उसे निकाला भी जा सकता है, किंतु

जब दीपक में तेल घी समाप्त हो गया, दीपक बुझने की कगार पर है अब उस दीपक से दूसरी ज्योति बदलना चाहो तो, दूसरी ज्योति अब जल ही ना पायेगी। यदि उसे जलाने की कोशिश करेंगे तो पहले वाली ही बुझ जायेगी, दूसरी जल ही न पायेगी या जली भी तो वह प्रज्ज्वलित करते ही जल जायेगी किंतु उसका स्थान प्राप्त न कर पायेगी। ऐसे ही जब तक हमारी श्वास ज्यादा खत्म नहीं हुयी है हमारा आयुकर्म अभी जब प्रारंभ ही हुआ है तब तक अपने जीवन की धारा को बदल सकते हैं।

महानुभाव! इसलिये कहा जाता है बाल्यअवस्था रत्नों की तरह से है, किशोरावस्था स्वर्ण की तरह से है, प्रौढ़ावस्था चांदी की तरह से है, वृद्धावस्था तांबे की तरह से है। बाद में बदलना बड़ा कठिन होता है। उपयोग बदलते ही दुःख सुख रूप प्रतिभासित होता है। उपयोग बदलते ही सब कुछ बदला-बदला सा दिखाई देता है। उपयोग बदल लो तो पाप प्राकृतियाँ पुण्य रूप परिवर्तित हो जाती हैं। उपयोग बदलने से हमें शरीर के कष्ट का आभास नहीं होता। जैसे कोई महिला सब्जी बना रही थी, सब्जी बनाते-बनाते बातें भी करती जा रही है, बातों में बहुत मन भी लग रहा था, कब चाकू उसकी अंगुली में लगा, उसका उपयोग वहाँ नहीं गया, वह बातों में मस्त है, बाद में देखा गीला-गीला सा क्या है तब देखा अंगुली खून से लहुलुहान हो गयी अब वह रोने चिल्लाने लगी। उपयोग जब बातों में था तब तो पता भी नहीं चला, उपयोग बदलते ही कष्ट लगने लगा। ऐसे ही होता है जब उपयोग किसी भी कार्य में डूबा हो तब बाहर का आभास नहीं होता। जैसे समुद्र में कोई डूबा है तो उसे बाहर की तपन का अहसास नहीं होता। ऐसे ही व्यक्ति जब अपने उपयोग को अपने में लगाता है तब उसे बाहर संसार की तपन का अहसास नहीं होता किन्तु अभी तक उपयोग दूसरों में लगाया है, उपयोग का दुरुपयोग किया है अब हम उपयोग का सदुपयोग करें।

हम अभी उपयोग का ही सही उपयोग नहीं कर पा रहे। भोग और उपभोग के दुरुपयोग व सदुपयोग में लगे हैं। अब हमें संकल्प लेना है हम अब केवल अपना योग नहीं उपयोग भी बदलें। उपयोग के बदलते ही हम स्वयं बदल जायेंगे, हमारे बदलते ही हमारा उपयोग बदल जायेगा। वस्तु का उपयोग करना बदल दो तो वस्तु बहुमूल्य हो जाती है। वस्तु का केवल योग-भोग-उपभोग बदलते रहेंगे तब तक वस्तु की सही मूल्यवत्ता ज्ञात नहीं होती।

आप से यही कहना चाहते हैं योग ही नहीं उपयोग भी बदलें। जिससे आप शवराही नहीं शिवराही बनें, दु:ख की राह नहीं सुख की राह चलें, इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान की जय।।

जीवन का गणित

महानुभाव! जीवन में कुछ ऐसा भी है जो करने के योग्य है, जीवन में कुछ ऐसा है जो न करने के योग्य है। जो व्यक्ति इस बात को अच्छी तरह से जानता है, समझता है कि मुझे क्या करने के योग्य है, क्या योग्य नहीं है मुझे कब क्या करना चाहिये, क्यों करना चाहिये, कैसे करना चाहिये, इसके संबंध में यदि वह जानता है तब निःसंदेह वह जीवन में कहीं भी पराजित नहीं होता कभी भी असफल नहीं होता।

पहले वह स्वयं को जाने वह कौन है? क्या है? क्यों है? जब व्यक्ति स्वयं के बारे में प्रश्न करता है तब उत्तर निकल कर आता है। कई बार हमारे पास बहुत सारे उत्तर होते हैं किन्तु बिना प्रश्नों के वे उत्तर निर्मूल होते हैं। बचपन में आप जब पढते थे, कोर्सबुक में कोई भी विषय हो चाहे इतिहास हो या हिंदी या कोई अन्य विषय। आप उसे पढ़ें और आप से कहा जाए कि आप इसके बारे में उत्तर दें। उस पाठ को पढ़ने के उपरांत भी आप दस उत्तर नहीं दे सकते। उस ही पाठ में से यदि कोई 25 प्रश्न बना ले, उन 25 प्रश्नों के उत्तर आप खटखट दे सकते हैं। प्रश्न सामने उपस्थित हुआ तो उत्तर आपको उसी में मिला। प्रश्न भी उसी में है, उत्तर भी उसी में है। दरअसल में हम भूल यह कर देते हैं कि प्रश्न कहीं और होता है, उत्तर कहीं दूसरी ओर खोजते है। जहाँ प्रश्न है वहीं उत्तर ढूँढें तो कोई मुसीबत नहीं है। जहाँ अंधकार है वहीं प्रकाश करने की कोशिश करें तो कोई मुश्किल नहीं। हम देखते हैं अंधकार हमारे अंदर है हम बाहर में सैकड़ों-हजारों दीपक जलाते हैं।

हम देखते हैं हमें भूख लगी है, हम उस क्षुधा का नाश करना चाहते हैं केवल शरीर की पूर्ति करके। मुख में ग्रास देने से क्षुधा वेदनी नष्ट नहीं होगी, क्षणभर के लिये वह भूख दब जायेगी। जैसे सूर्य का आताप आ रहा हो तो छाता तान लेने से क्षणभर के लिए वह धूप नहीं आयेगी किन्तु उसका समाधान पूरा नहीं हुआ। पूरा समाधान ये है जहाँ धूप आती ही नहीं वहाँ जाकर बैठ जाओ। प्रश्न बाहर के हैं समाधान अंदर खोजते हैं, प्रश्न अंदर के हैं समाधान बाहर खोजते हैं। आत्मा से संबंधित प्रश्न है उनके उत्तर तो हम दूसरों से पूछते हैं, शास्त्रों में खोजते हैं, तीर्थों में खोजते हैं। और जो दूसरों के प्रश्न हैं वह अंदर से पूछते हैं जैसे अमुक लड़का/लड़की की शादी अब तक क्यों नहीं हुयी? या उसके नंबर इतने अच्छे कैसे आ गये आदि-आदि प्रश्नों के उत्तर अपने अंदर खोज रहे हैं। दीपक जल रहा है, वह बुझने को है और हम बाल्टीभर तेल बाहर डाल दें यह मूर्खता नहीं तो क्या है? ऐसी मूर्खता भरी बातों से हमारे जीवन का समाधान नहीं हो सकता।

सर्वप्रथम हमें सोचना है कि हमें क्या करना है, कब करना है, क्यों करना है, कैसे करना है? यह सभी प्रश्न अपने अंदर से ही पैदा हों, तब इनका उत्तर अपने अंदर ही खोजना चाहिये। जब-जब भी प्रश्न अंदर से पैदा होते हैं, तब-तब उनका समाधान लेने हम अपने गुरुओं के पास पहुँच जाते हैं, पिता के पास, किसी विद्वान के पास पहुँच जाते हैं, वे तुम्हें सम्यक् उत्तर नहीं देते केवल तुम्हारी शंका को दबा देते हैं तुम्हारी गाड़ी को मोड़ देते हैं प्रश्न ज्यों का त्यों खड़ा रहता है। क्यों? क्योंकि वे उसका सही उत्तर दे ही नहीं सकते। तुम पूछते हो मेरे मन में अज्ञान है, कैसे दूर होगा? सामने वाला बतायेगा शास्त्रों को पढ़ो तो तुम्हें ज्ञान की प्राप्ति हो जायेगी किन्तु नहीं, यह तो वैसा ही उत्तर हुआ कि तुम्हारे कमरे में अंधेरा है कैसे दूर होगा? सामने वाला कहता है power house में लाइट है वहाँ पर एक हेलोजन लगा दो, प्रकाश हो जायेगा। भैया! वहाँ के हेलोजन से तुम्हारे

कमरे में प्रकाश नहीं हो सकता। ऐसे ही शास्त्रों को पढ़ने से तुम्हारी आत्मा का अज्ञान दूर नहीं हो सकता, तो ये प्रश्न तो ऐसे हैं प्रश्न कहीं उत्तर कहीं। जैसे चोट लगी बड़े भाई को, दवा खा रहा है छोटा भाई। हमें जहाँ प्रश्न है वहीं उत्तर खोजना पड़ेगा, जो पेड़ सूख रहा है उसी में पानी देना पड़ेगा।

हमारे मन में जब यह भाव आता है कि हमें प्रभु परमात्मा के प्रति क्या करना चाहिये, कोई कहता है सिर झुकाओ, मूर्ति स्थापित करो, पूजा करो, जाप लगाओ आदि किंतु अंदर से उत्तर आता है यदि हमारी प्रभु के प्रति श्रद्धा है तो उनकी भक्ति करना चाहिये। तुमने प्रभु को प्रभु मान लिया तो उनके गुणों की प्राप्ति की ललक तुम्हारे अंदर होना चाहिये। केवल बाहर की क्रिया करने से प्रभु के प्रति तुम्हारे कर्त्तव्य की पूर्णता नहीं हो जाती। तुम्हारे अंदर से जो प्रभुभक्ति की धारा फूट पड़ेगी वह भक्ति की धारा तुम्हारे मन का प्रक्षालन करेगी, और यदि तुमने किसी और से पूछा कि भगवान के प्रति मेरा क्या कर्त्तव्य है-सामने वाला कहता है मूर्ति रखवा दे, मंदिर बनवा दे। वह कहता है मेरी श्रद्धा वगैरह तो कुछ है नहीं अरे! तू रख जा कोई बात नहीं है। भैया! जब श्रद्धा नहीं है तो बाहर के मंदिर तुम्हारे अंदर श्रद्धा का प्रकाश नहीं कर सकते, भक्ति का फल नहीं दे सकते।

भक्ति का वृक्ष जब तुम्हारी चेतना की भूमि पर बुवेगा तभी वह तुम्हारी चेतना को मोक्ष का फल देगा, श्रद्धा का सूर्य तुम्हारी चेतना के क्षितिज पर उदित होगा तभी तुम्हारी आत्मा को आनंदित कर सकेगा, बाहर से कुछ होने वाला नहीं है। किन्तु ये केवल मन को बहलाने वाली बात है प्रभु परमात्मा के प्रति यदि तुम्हारी सच्ची भक्ति निष्ठा है तो जो कुछ भी होगा अपने आप होता चला जायेगा। जो पंडित-विद्वान लोग कहते हैं, वह भी हो सकता है और नहीं भी हो सकता है, किंतु भक्ति की धारा में जो कुछ भी होगा वह परमात्मा से मिलने की सीढ़ी होगी। किंतु वह भक्ति आत्मा से प्रस्फुटित हुयी

होनी चाहिये। पुष्प से निकली गंध ही वास्तव में पुष्प की है, बाहर से छिड़का हुआ इत्र ज्यादा दिन तक टिक नहीं सकेगा।

महानुभाव! जिसके मन में प्रभु परमात्मा के प्रति भक्ति का भाव जाग्रत हुआ है, जिसके मन में संत-गुरू-साधु पुरुषों के प्रति स्वत: ही सेवा का भाव उत्पन्न हुआ है, किसी ने कहा नहीं अपने मन से भावना आयी है, यदि कोई रोक भी रहा है तब भी मन कह रहा है नहीं मुझे सेवा करनी है उसका अंतरंग मन वहीं लगा है तो उसे फल निश्चित रूप से मिलेगा। यदि सेवा भाव अंतरंग का नहीं है मात्र मैं उनके पास जाऊँ, उनके साथ अपनी फोटो खिचाऊँ, कमंडल पकड़ा एक क्षण के लिये, फोटो खींचा और बस, इससे केवल तुम अपनी आत्मा को छल सकते हो, दुनिया को नहीं, अपनी आत्मा को धोका दे सकते हैं इससे आत्मकल्याण नहीं हो सकता। भक्ति जब अंतरंग से जन्मती है तब यह नहीं देखा जाता कि बाह्य जगत में क्या हो रहा है। मेरा चित्र खिचा या नहीं, अखबार में आया या नहीं इन सबसे कोई मतलब नहीं। मेरी आत्मा में भावना हुयी सेवा करने की, मैंने सेवा की, मुझे शांति मिलनी चाहिये, वह मुझे मिली, जिसकी मैंने सेवा की उसके धर्म ध्यान में वृद्धि हो।

यह प्रश्न अंदर से पैदा हुआ था उसका समाधान भी अंदर में खोजा। मुझे संसार के प्रति क्या करना है? संसार में अनादि से जन्म-मरण करते आ रहे हैं, अब संसार में कब तक रहना है? व्यक्ति चाहता है हम संसार सागर से पार हो जायें, पर इस संसार को छोड़ेंगे नहीं, हम खंभे को पकड कर बैठे हैं और चाहते हैं स्थान परिवर्तन हो जाये। गांठ खोली नहीं नाव में बैठे हैं नाव बस वहीं की वहीं हिल रही है वह नाव दूसरे किनारे कैसे पहुँचेगी? नहीं पहुँच सकती। जब तक संसार से विरक्ति नहीं होगी तब तक संसार सागर से पार नहीं हो सकते। संसार से विरक्ति मात्र दिखाने के लिये न हो अंदर से हो। यदि किसी डिब्बे में रखी शक्कर के ऊपर आपने नमक की चिट

लगा दी तो नमक लिखकर दुनिया के लोगों को तो धोका दे सकते हो किंतु चींटी को धोका नहीं दे सकते, वह शक्कर की गंध से वहाँ तक पहुँच ही जायेगी।

महानुभाव! जो शब्दों को पकड़ते हैं उन्हें धोका दिया जा सकता है, जो भावों को पकड़ते हैं उन्हें धोका नहीं दिया जा सकता, इसलिये संसार से विरक्ति तुम्हारे चित्त में होना चाहिये कहीं घर द्वार छोड़कर जंगल में बैठ गये और अंदर में संसार बसा हुआ है तो जंगल में बैठने से भी क्या होगा? दु:खी प्राणियों के प्रति मन में करुणा का भाव होना चाहिये, तुम केवल दु:खी व्यक्ति को कुछ देकर फोटो खिचा रहे हो कि मैंने इसकी सहायता की और बाद में उससे छीनकर लेकर चले गये यह सेवा का ढोंग करने से तुम्हारा कल्याण नहीं होगा। मन में करुणा का भाव आयेगा तो व्यक्ति अपने तन के वस्त्र भी उस दु:खी व्यक्ति को दे देगा। अपनी थाली की रोटी उठाकर भी उसे दे देगा। करुणा का भाव जब जन्म लेता है तब व्यक्ति दिखावा नहीं करता वह अपनी भावनाओं को दबा नहीं पाता। करुणा भाव को कहा नहीं जाता।

महानुभाव! आपने पं. नेमिचन्द जी का नाम सुना होगा जो आगे जाकर आचार्य विमल सागर जी हुये। जब वे ग्रहस्थ अवस्था में थे तो एक बार अपने लिये भोजन बना रहे थे भोजन तैयार हुआ कि अचानक एक ब्रह्मचारी जी आ गये। उन्होंने कहा-''ब्रह्मचारी जी! भोजन करिये'' बह्मचारी जी ने सरलता से भोजन कर लिया। पं. जी को बड़ा आनन्द आया। उन्होंने अपने लिये फिर भोजन बनाया तभी एक और ब्रह्मचारी जी आ गये। उन्होंने वो भोजन उन ब्रह्मचारी जी को करा दिया और फिर ये सोचकर कि समय ज्यादा हो गया है सिर्फ चावल ही पका लिये इतने में एक और ब्रह्मचारी जी आ गये। बोले पं. जी भोजन तैयार है। पण्डित जी ने कहा सिर्फ चावल बने हैं, यदि आप खायें तो मेरा सौभाग्य होगा। ब्रह्मचारी जी ने भोजन स्वीकार किया उस दिन पण्डित

जी को 2 बज गये। फिर क्या था उन्होंने चना गुड़ व अन्य मेवा खाकर पानी पिया और पेट भर लिया किसी ने कहा भी है ''जो करेगा सेवा वो पावेगा मेवा'' ऐसी सेवा भावना से ओत-प्रोत पण्डित जी ही आगे जाकर पूज्य आचार्य श्री विमल सागर जी हुये।

महानुभाव! पू. आचार्य भगवन् श्री शान्ति सागर जी महाराज जब (सातगोड़ा) गृहस्थ अवस्था में थे तब उनके अन्दर बहुत करुणा दया गरीबों के प्रति, मूक तिर्यंचों के प्रति देखने में आती थी जब उनके खेत में पक्षी दाना चुगने आते तो वो उन्हें उड़ाते नहीं थे बल्कि उनके लिये पानी भरकर रख दिया करते थे। कोई कहता कि हम अपने खेत के पक्षी भी तुम्हारे खेत में भेज देंगे तो वे कहते थे भेज दो यदि पक्षी पूरे खेत का दाना भी चुग लेंगे तो भी हमारे खेत में कमी नहीं आयेगी और सच में उनकी फसल सभी किसान भाईयों से ज्यादा होती थी।

उनके अन्दर करुणा-दया-सेवा का भाव कूट-कूट कर भरा था। जब शूद्र लोगों को कुएँ से पानी नहीं भरने दिया जाता था तब भी वे सबको समझाते कि सभी समान हैं सब दया के पात्र हैं। सभी को पानी लेने दो, तुम पानी से भी ज्यादा पतले क्यों बनते हो। वे भी इंसान हैं, कल इस करनी से कहीं तुम भी शुद्र न हो जाओ। ऐसी करुणा की मूर्ति थे आचार्य श्री, कोई उनके पास कुछ मांगने आता तो वे कई बार अपने उपयोग की वस्तुएँ भी दूसरों को दान में दे देते थे। उन्हें दूसरो को खिलाने में ज्यादा आनन्द आता था, वे स्वयं भूखे रहकर दूसरों को खिलाने का भाव रखते थे और प्रतिदिन किसी न किसी भूखे को भोजन कराकर असीम आनन्द की अनुभूति करते थे और कहते थे कि इससे मुझे अन्तरंग की शान्ति मिलती है। कितने महापुरुषों की चेष्टायें देखीं जिन्होंने अपने तन के वस्त्र दूसरों को दे दिये, अपनी थाली का भोजन भी दे दिया। मन में करुणा का भाव

आया उस करुणा भाव के समाधान हेतु जो क्रिया की वह भावना अंतरंग से आयी। अगली बात-

महानुभाव! धर्म के प्रति श्रद्धा का भाव, कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा का भाव होना। धर्म वह है जो श्रद्धा पूर्वक धारण किया जाये, जिस धर्म में श्रद्धा नहीं होती है उस धर्म की क्रिया करना सिर्फ व्यापार कहलाता है। मैंने भगवान को छत्र चढ़ाया मेरी रक्षा हो जाये, मैंने पूजा पाठ किया मुझे ऐसा फल मिल जाये तो जो भी क्रिया बिना श्रद्धा के की यह सिर्फ व्यापार हो सकती है। श्रद्धा जब अंतरंग में होती है तब जो कोई भी क्रिया की जाती है वह सभी क्रिया धर्म की क्रिया बन सकती हैं। चाहे त्याग के क्षेत्र में की गयी क्रिया हो, चाहे दान के क्षेत्र में की गयी क्रिया हो, चाहे संयम की क्रिया हो, चाहे वह तप रूप हो, चाहे शीलादि का महात्म्य प्रकट करने वाली हो जब कोई भी क्रिया ध र्म के प्रति श्रद्धापूर्वक अंतरंग से प्रकट होती है, श्रद्धा ज्यों-ज्यों गहराती है, धर्म आत्मा में प्रकट होने लगता है। धर्म कहिये तो स्वभाव। हमारी आत्मा का जो स्वभाव है उसे प्राप्त करने के लिये जो-जो पुरुषार्थ किये जाते हैं वह सब पुरुषार्थ धर्म कहलाता है और जो आत्मा के स्वभाव को प्राप्त करने के लिये नहीं किया गया, किसी वस्तु विशेष की वांछा से किया गया है वह सच्चा धर्म नहीं है।

आपने मंदिर में आकर नौकरी की। 30 दिन मंदिर में समय दिया अभिषेक-पूजन किया, अब भगवान मुझे कुछ दे दो, यह तो आप मजदूरी माँग रहे हो। मजदूरी लिमिट में मिलती है मजदूरी में किसी को मालकियत नहीं मिलती। मालकियत मिलती है श्रद्धा से। यदि कोई किसी का पुत्र बन गया तो उसे पिता की सम्पत्ति मिल जायेगी और कोई पुत्र नहीं नौकर बन जाये तो उसे नौकरी ही मिलेगी।

धर्म नौकरी का विषय नहीं, धर्म तो परमपिता परमात्मा की वसीयत हमारे नाम हो जाये लेकिन वह तब होगी जब हम सच्चे

हृदय से उन्हें अपना पिता मान लें। हम सच्चे हृदय से अपने स्वभाव को मान लें, तो स्वभाव की जो भी सम्पत्ति है वह सब हमें प्राप्त हो सकती है। अगली बात-

हम कर्त्तव्य का पालन तो करते हैं किंतु संभव है कई बार उस कर्त्तव्य का पालन दूसरों को संतुष्ट करने के लिये करते हैं, उसमें कई बार स्वयं को संतुष्टि नहीं होती। और कई बार स्वयं को संतुष्ट करने के लिये कर्त्तव्य का पालन करते हैं, किन्तु कर्त्तव्य वह होता है जिसमें निष्ठा का भाव हो, जिसमें दिखावे का भाव न हो, जिसमें ये भाव हो कि ये कर्त्तव्य करने से मुझे भी संतोष होगा, सामने वाले को भी सुखानुभूति होगी।

एक बार पेरिस में बड़ा भयंकर दंगा हो गया। मैथ्यू डेन्जलर नामक एक पत्रकार दंगाइयों द्वारा फेंके जाने वाले पत्थरों की वर्षा के बीच बैठा हुआ अपने अखबार के लिए विवरण लिख रहा था। दंगा काबू में नहीं आया, तो विवश होकर सेना ने गोली चला दी। पत्रकार को भी गोली लगी। वह घायल होकर गिर पड़ा। सहायता के लिये जब डॉक्टर आया तो बोला-लिखने में क्या रखा है, अब तो तुम्हारे लिए आराम ही मुख्य काम है। पत्रकार बोला-''अपने कर्त्तव्य का पालन करना अपना धर्म होता है। मैं पत्रकार हूँ, मेरा कर्त्तव्य है-घटना का वर्णन लिखना। यह मेरी कलम लो और इस पृष्ठ पर नीचे लिख दो-सांयकाल 3 बजे सेना की गोली चली, जिससे तीन घायल, एक मरा''। डॉक्टर ने पूछा-'मरा कौन'? उत्तर मिला-मैं। इतना कहते ही पत्रकार के प्राण-पखेरु उड़ गए। यह है कर्त्तव्य निष्ठा का उदाहरण। कर्त्तव्य निष्ठा में आनन्द का अनुभव उसे ही होता है, जो कर्त्तव्य पालन में दृढ़ रहता है। इस प्रकार जब निष्ठा के साथ कर्त्तव्यों का पालन किया जाता है तो वह कर्त्तव्य पालन करना भी पूजा बन जाती है, वह भी धर्म बन जाता है। वह कर्त्तव्यपालन एक तप भी बन सकता है और

एक यज्ञ भी हो सकता है। एक छोटे से कर्त्तव्य का पालन करने से हजारों यज्ञों का पुण्य प्राप्त हो सकता है।

एक व्यक्ति प्यासा पड़ा था, तुम्हारे पास पानी था, उस समय प्यासे को पानी पिलाकर तुमने उसके प्राण बचा दिये, संभव है सैकड़ों यज्ञों का फल तुम्हें प्राप्त हो सकता है किन्तु उस समय तुमने उसे पानी न पिलाकर, कहीं ओर सैकड़ों टैंकर मंगाकर हजारों व्यक्तियों को पानी पिलाया तो उसके माध्यम से उसकी पूर्ति नहीं की जा सकती, कर्त्तव्य समय और स्थान के आधार से होते हैं।

महानुभाव! ये सभी बातें हमारे जीवन में बहुत आवश्यक हैं-हमें क्या, कब, क्यों, कैसे कार्य करना है, किसके प्रति हमारे क्या कर्त्तव्य हैं, किसके प्रति हमारा क्या भाव है, हम प्रश्न अंदर से पैदा करें तो उत्तर भी अंदर से खोजें। प्रश्न बाहर के हैं तो उत्तर बाहर में खोजें। बाहर के प्रश्नों को अंदर में मत ले जाओ, और अंदर के प्रश्नों को बाहर में मत पूछो इतना सा जीवन का गणित है यदि ये बात आपकी समझ में आ गयी तो समझ लेना पूरे जीवन का गणित आपको समझ में आ जायेगा। जब तक गणित समझ न आये तब तक नकल करके दो चार प्रश्नों के हल तो किये जा सकते हैं पर उनसे सफलता नहीं मिलती। आप सभी लोग असल में आयें, नकल को छोड़ें, नकलीपने को छोड़ें। इन्हीं मंगलभावनाओं के साथ.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान की जय।।

प्रभु भक्ति

महानुभाव! संसारी प्राणी संसार में जो कोई भी कार्य करता है उन सभी कार्यों को सम्पन्न करने के लिए उसे बल की आवश्यकता होती है, बिना बल के कोई क्रिया सम्पन्न नहीं होती। बल व्यय होता है, द्रव्य ज्यों की त्यों रहता है, गुण भी द्रव्य के साथ अविनाभावी रूप से रहते हैं। प्रत्येक द्रव्य की व प्रत्येक गुण की पर्याय भी होती है। जो भी पुद्गल द्रव्य हैं उनका जब भी उपभोग व भोग किया जाता है भोगने वाले द्रव्य तो एक बार भोगने में आ जाते हैं किन्तु जिनका उपभोग किया जाता है वे द्रव्य उपभोग करते-करते अपनी शक्ति से कभी रहित भी होते हैं कभी शक्ति से सहित भी होते हैं। उनकी पर्याय हमेशा एक जैसी नहीं रहती। जैसे आप दूरसंचार यंत्र का प्रयोग करते हैं जिसे आपकी भाषा में कहें 'मोबाइल'।

उस यंत्र के माध्यम से आप अपने शब्दों को दूसरों तक पहुँचाते हैं। किन्तु मोबाइल चाहे नया ही क्यों न हो उसमें बैटरी होती है, बैटरी से वह चार्ज होता है पुनः कुछ समय तक कार्य करता है पुनः डिसचार्ज हो जाता है पुनः बाद में चार्ज करना पड़ता है ऐसा कई बार करना पड़ता है। बार-बार चार्ज करते हैं तो वह दीर्घकाल तक काम देता है चार्ज नहीं करो तो काम न देगा। किन्तु चार्ज भी कैसे हो? कहाँ से हो? जहाँ पर पॉवर हाउस है वहाँ से उसे जोड़ दो, उसका दोनों का आपस में स्पर्श हो जाए तो उसकी पॉवर इसके पास आ जाती है।

कई बार पॉवर इकट्ठी भी कर लेते हैं, संग्रहीत कर लेते हैं, पॉवर बैंक भी होती है। लाइट नहीं होने पर भी मोबाइल में लगाया वह चार्ज हो जाता है। लाइट नहीं आ रही, पॉवर बैंक नहीं है तब भी मोबाईल चार्ज नही हो सकेगा। यदि लाइट भी है पॉवर बैंक भी है पर उसमें तार स्पर्श नहीं हो रहा या charging cable खराब है तब भी चार्ज नहीं होगा। अथवा यदि सब ठीक है पर मोबाइल की बैटरी ही खराब है तब भी वह चार्ज नहीं होगा। कुल मिलाकर सभी कारण ठीक उपस्थित होंगे तभी मोबाइल चार्ज होगा। जिस प्रकार मोबाइल के लिए बार-बार शक्ति की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार प्रभु भक्ति कुछ नहीं बस चेतना की इस बैटरी को चार्ज करने के लिये पॉवर हाउस है। 24 घंटे में एक बार जो भक्त प्रभु की मन से भक्ति करता है उसे जो आनंद की अनुभूति होती है वह वही जानता है। प्रातः काल से ही प्रभु का दर्शन पूजन अभिषेक उनकी भक्ति स्तुति आदि पढ लिया तो उसे बड़ी शांति मिलती है यदि कभी क्रम छूट जाये तो उस दिन लगता है आज सब कुछ छूट सा गया है।

एक भव्य भक्त ही परमात्मा से अपनी बैटरी को चार्ज कर पाता है यदि वह भव्य नहीं है तो चार्ज नहीं कर सकता। दूसरी बात power house भी ठीक होना चाहिये इलैक्ट्रिकसिटी हो अर्थात् वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी हो, जन्म मरण के इस चक्र से मुक्त हो चुके हों उनसे बैटरी चार्ज होती है। नाम मात्र के परमात्मा से बैटरी चार्ज नहीं हो सकती। उस भक्त की भक्ति प्रभु से एकहित होनी चाहिये यदि बैटरी का प्लग इलैक्ट्रिकसिटी से टच हो जायेगा टच होते ही करंट आना शुरु हो जायेगा, थोड़ा भी गेप रहेगा तो करंट नहीं आ पायेगा। ऐसे ही भक्त और भगवान का संबंध है, जब भक्त की श्रद्धा प्रभु के चरणों में लग जायेगी, वह भक्त जब भगवान में एकीकृत हो जाता है, तब उसे लगता है कि मुझे भगवान की शक्ति

मिल गयी। वह भक्ति के वश से बड़े-बड़े कार्यों को सम्पन्न कर देता है। वह कहता है मुझे मेरे भगवान पर भरोसा है, जब भक्त के अंदर का विश्वास बोलता है तब उस श्रद्धा से बड़े-बड़े काम भी हो जाते हैं।

महानुभाव! श्रद्धा स्विचबोर्ड से मोबाइल के बीच की केबिल है जो वहाँ पर भी टच है, यहाँ भी टच है। यहाँ श्रद्धा आत्मा में उत्पन्न हुयी और वह भाव प्रभु परमात्मा तक भावों से स्पर्श कर रहा है। चाहे शरीर से स्पर्शित न हो किंतु भावों से संस्पर्शित है तो करंट वहाँ से आ रहा है। बीच में 1cm का gap भी करंट में बाधक है ऐसे ही भक्त भगवान में जहाँ भी विग्रह पड़ जाये तो भगवान की पॉवर भक्त को नहीं मिल पाती। महानुभाव! भक्ति के चार गुण होते हैं व चार दोष होते हैं। भक्ति के चार गुण होते हैं तभी भक्ति होती है अन्यथा दोषों से भक्ति का समीचीन फल नहीं मिलता। वे चार गुण होते हैं-

इष्ट आराध्य के प्रति अगाध श्रद्धा-वह श्रद्धा क्या-क्यों कैसे करके नहीं वरन सहज में हो। सहजभाव की श्रद्धा से ही वह शक्ति प्राप्त होती है, यदि सहज भाव नहीं है तो फिर कितनी ही उठा-पटक करें उसे भगवान की शक्ति प्राप्त नहीं होगी।

भक्त का भगवान के प्रति निःस्वार्थ समर्पण-समर्पण की कोई परिभाषा नहीं होती, क्योंकि समर्पण में कोई आशा नहीं होती कोई भावना, याचना नहीं होती उस समर्पण में उस भक्त को आनंद की अनुभूति होनी चाहिये, नहीं तो वह समर्पण ही नहीं।

अपने इष्ट आराध्य के प्रति पूर्ण विनय भाव-श्रद्धा-समर्पण-विनय ये तीन गुण बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। यदि वह अपने इष्टाराध्य के प्रति नम्रीभूत नहीं होता है, मन से, वचन से, काय से अपने प्रभु परमात्मा

के प्रति सहज समर्पित नहीं हो पाता तो अभी श्रद्धा कमजोर है। विनय करने से श्रद्धा अपने आप प्रकट होती है। अगली बात है-

भक्ति-प्रभु परमात्मा के समान, उन्हीं के गुणों को प्राप्त करने की भावना भाना। लाइट भी आ रही है, मोबाइल भी लगा है, data cable भी ठीक है किंतु वह मोबाइल चार्जिंग ले रहा है या नहीं ले रहा। कई बार ऐसा होता है कि Wire हिल गया, दिख रहा था सब ठीक है चार्ज हो रहा होगा किन्तु जब हाथ में लिया तो देखा चार्ज ही नहीं हुआ। ऐसे ही श्रद्धा भी हो, समर्पण भी हो, विनय का भाव भी हो किन्तु यदि भक्ति रूपी Wire हिल रहा है तो आत्मा अतिशय पुण्य वर्गणाओं को ग्रहण न कर पाएगी, चार्ज न हो पाएगी। तो भक्ति भी अनिवार्य है। ये चार बाते हैं तब हमारी आत्मा का यह यंत्र परमात्मा के Power House से Charge हो सकता है।

अब इसमें कोई दोष नहीं होना चाहिये। चार दोष हैं, उनमें से कोई दोष न होगा तो चार्ज ठीक से हो सकेगा। वे दोष हैं-

शंका-यदि प्रभु परमात्मा की भक्ति करने वाला भक्त मन में शंका से युक्त है तो समझो डाटाकेबल बीच में से कट है, कट होने से चार्जिंग नहीं लेगा यदि बार-बार शंका होगी कि मैं जो भक्ति कर रहा हूँ उसका फल मिलेगा या नहीं, क्या होगा क्या नहीं। तो शंका के साथ कोई भक्त समीचीन भक्ति का फल प्राप्त नहीं कर सकता।

स्वार्थ-स्वार्थ कहो या कांक्षा, जब तक है तब तक भी वह प्रभु भक्ति का फल नहीं ले सकता। चार्जिंग तो ठीक है, पर वह कहता है एक मिनिट के अंदर ही मेरा मोबाइल चार्ज हो जाना चाहिये। नहीं! क्रमशः ही होगा। मन में कोई याचना, भावना है तब भी पूर्ण भक्ति नहीं, वह अपने प्रभु परमात्मा से कोई याचना न करे। चार्जिंग चार्जिंग है कोई बैलेंस नहीं है, बैलेंस होगा तो चार्जिंग सार्थक है,

यदि बैलेंस है चार्ज नहीं है तब भी बेकार, तो शंका भी नहीं होना चाहिये, कांक्षा भी नहीं होना चाहिये और जो उसमें पॉवर है वह क्रम से जैसे आ रहा है वैसे आना चाहिये। तीसरा दोष है-

छल-भक्ति में छल नहीं हो यदि भक्ति करते-करते मन में छल आ रहा है तो छल के साथ भी भक्ति नहीं की जा सकती क्योंकि छलयुक्त भक्ति करना तो ऐसे ही है जैसे कहीं दीवार पर स्विचबोर्ड का चित्र बना दिया और उसमें अपना मोबाइल लगाना। यथार्थ में स्विचबोर्ड होना चाहिये अर्थात् यथार्थ भगवान हों, यथार्थ भक्त हो, यथार्थ भक्ति हो तब ही भक्ति का फल सार्थक है।

भक्ति शंका, कांक्षा, छल तीनों से रहित निर्दोष होना चाहिये। भक्ति नि:शंकित होती है, निष्काम होती है, निरभिलाषा से होती है वह तो सहज समर्पण है। समर्पण के पहले बुद्धि और विवेक का इस्तेमाल किया जा सकता है, समर्पण के बाद कुछ नहीं बस श्रद्धा कार्य करती है। वह भक्ति हृदय से निष्पन्न होती है हृदय में कोई मस्तिष्क नहीं होता और मस्तिष्क के पास हृदय नहीं होता। जो मस्तिष्क के सहारे जीने वाले होते हैं वे कभी नि:स्वार्थ समर्पण कर नहीं सकते। जो नि:स्वार्थ समर्पण करते हैं वे बुद्धि को लगा नहीं सकते। आत्मा का यह यंत्र शंका, कांक्षा, माया से रहित हो तभी चार्ज होगा। चौथा दोष है-

जल्दिबाजी-समय का अभाव है पर भक्ति करना चाहता है। वह समय का महत्त्व ज्यादा रख रहा है, भगवान का कम। भगवान की भक्ति में तो समय का अहसास ही नहीं होता। जल्दिबाजी में जो भक्ति का फल प्राप्त करना चाहता है उसे ऐसे ही समझो वह गर्भ के 9 माह बिताये बिना मात्र कुछ ही दिनों में पुत्र का जन्म हो जाये। खेत में बीज बोते ही फसल आ जाये। वह सोच रहा है स्कूल में पहले दिन पढ़ने गये और तुरंत ही रिजल्ट व पुरस्कार हाथ में आ

जाये, नहीं, समय के साथ जिस तरह फल की प्राप्ति होती है इसी प्रकार भक्ति का फल भी समय पर मिलता है। किन्तु प्रायःकर के कई भक्त भक्ति में अधीर हो जाते हैं। मैं इतने दिन से पूजा पाठ कर रहा हूँ जाप, ध्यान यात्रादि करता हूँ मुझे अभी तक कुछ फल नहीं मिला, इसका आशय है उसने सच्ची भक्ति की ही नहीं।

समय का इंतजार भी कर लिया, याचना भी की, भगवान पर शंका भी होने लगी, छल कपट भी करने लगा और कहे मैंने भक्ति की है। भक्ति करने वाला कभी अपनी भक्ति का दम्भ नहीं भरता। भक्ति में कहीं कोई अहसान की बात नहीं होती भक्ति में तो समर्पण करता है। उसी समर्पण में आनंद की अनुभूति हो जाती है। यदि समर्पण में आनंद की अनुभूति नहीं हो रही तो समझो अभी सच्चा समर्पण है ही नहीं। भक्त कभी अपने भगवान से माँगता ही नहीं उसे तो बिन मांगे सब कुछ मिल जाता है। माँगता तो वह है जिसकी भक्ति कच्ची होती है, सच्ची नहीं। सच्ची भक्ति में याचना नहीं है, वंचना नहीं, शंका-छलादि नहीं है। ये रूप जहाँ है वह सच्ची भक्ति नहीं है।

महानुभाव! प्रभु परमात्मा में एकीकृत हुये बिना भक्ति का आनंद नहीं आता। भक्ति तो बहुत दूर की बात है यदि तुम हाथ में मिश्री का टुकड़ा ले लो, और जीभ निकालकर मात्र सामने से देखो, जीभ और मिश्री टच न हो तो मिश्री का स्वाद नहीं आयेगा, तो भगवान की भक्ति का स्वाद कहाँ से आयेगा।

जो एकीभाव तुम्हारा तुम्हारे घर के सदस्यों के प्रति हो जाता है, अपने शरीर के प्रति जो एकीभाव है, जब शरीर में कष्ट होता है तो आत्मा में अनुभूति होती है, किसी मकान-दुकान के गिरने पर तुम्हारे हृदय पर घात होता है, ऐसा ही एकीभाव अपने प्रभु परमात्मा के प्रति हो जाये तो उस प्रभु परमात्मा से तुम्हें शक्ति मिलना प्रारंभ

हो जायेगी। जिस माँ का अपने बेटे के प्रति बहुत मोह होता है, बेटा अस्वस्थ हो तो माँ को स्वप्न आ जाता है, बेटा दूर है तो माँ को उसके आने का समाचार, आने का अहसास पूर्व में ही हो जाता है, किन्तु जिस माँ को अपने बेटे के प्रति मोह नहीं होता है उस माँ को बेटे का, बेटे को माँ का ख्याल ही नहीं आता और न ही ऐसी कोई अनुभूति होती है।

ऐसे ही प्रभु परमात्मा की भक्ति ऐसे करें कि वह भक्त भगवान के दर को जब छोड़कर जाये तो उसे उनके बिना चैन न पड़े। भगवान के बिना आँखें गीली हो जायें,

अंदर से तड़पन पैदा हो। जैसा कि आप विनय पाठ में पढ़ते हैं-

तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसे जल बिन मीन।
जन्म जरा मेरी हर्‌यो करो मोहि स्वाधीन॥

इस प्रकार की तड़पन होनी चाहिये जैसे मछली को पानी से बाहर निकालने पर होती है, भक्त को भगवान के अभाव में ऐसी बेचैनी हो, किसी काम में मन न लगे, भूख-प्यास नींद सब उड़ जाये, बस प्रतिक्षण भगवान ही भगवान दिखायी दे रहे हों यह भगवान के प्रति सच्ची भक्ति का प्रतीक है। जिसे भगवान के बिना सब चैन पड़ रहा है भगवान के पास गया भी और यही कहे कि मैं आपके पास इसीलिये आता हूँ कि मेरा व्यापार अच्छे से चले, मेरा परिवार चलता रहे, मुझे शरीर का लाभ-सुख मिले, तो वह भगवान की भक्ति नहीं कर रहा, वह तो भगवान के यहाँ नौकरी करके मजदूरी की वस्तु प्राप्त करना चाहता है। जैसे कोई मजदूर किसी सेठ के यहाँ नौकरी करके कहे सेठ जी मैं नौकरी कर रहा हूँ मुझे फल, अमुक वस्तु दिला दें जैसे वह मजदूर सेठ के यहाँ पर कार्य करता है, वैसे ही यहाँ मजदूरी सी हो गयी भक्ति नहीं हुयी।

भक्ति और मजदूरी में बहुत फर्क है। मजदूरी शरीर से की जाती है, भक्ति अन्तरात्मा से की जाती है। अन्तरात्मा से भक्ति करते समय मन-वचन-काय का सहयोग लिया जाता है मन-वचन-काय-धन साधन सब समर्पित कर दिये जाते हैं। आत्मा भी समर्पित हो जाती है, तब भक्ति का आनंद आता है।

महानुभाव! आप सच्चे मन से उस प्रभु परमात्मा की भक्ति करो, डूब जाओ, एकमेक हो जाओ जैसे दूध में घी, पानी में शीतलता, पुष्प की सुगंधि आदि सब एकमेक हैं ऐसे तुम भी प्रभु भक्ति में एकमेक हो जाओ इससे तुम्हें सच्चा आनंद प्राप्त होगा। इस आनंद के बाद तुम्हें संसार के अन्य आनंदों की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। आप भी अपने स्वात्मोत्पन्न आनंद का अनुभव करें ऐसी मंगल भावनाओं के साथ.....।।

॥ श्री शांतिनाथ भगवान की जय ॥

चित्त की पवित्रता

महानुभाव! संसारी प्राणी सभी चीजों को शुद्ध करता है, क्योंकि अशुद्धि उसे पसंद नहीं है। जमीन पर बैठता है तो जमीन को साफ करके बैठता है। मनुष्य ही नहीं श्वान को भी देखा है पूंछ के द्वारा जमीन को साफ करता है तब बैठता है, पशुपक्षी भी गंदगी पर न बैठकर साफ-सुथरे स्थान पर बैठते हैं। मनुष्य सदैव स्वच्छ वस्त्र पहनना पसंद करता है बजाय गंदे वस्त्रों के, भले ही वे धुले वस्त्रों की कीमत गंदे वस्त्रों की अपेक्षा कम ही क्यों न हो तब भी साफ सुथरे कपड़े ही पहनना चाहता है। स्थान की भी शुद्धि हो, वस्त्रों की भी शुद्धि हो, शरीर की भी शुद्धि हो, शरीर पर पसीना आ रहा हो, धूल चिपक रही हो तो सोचता है पहले शरीर को साफ कर लूँ चाहे स्नान करे या हाथ मुँह धोए।

व्यक्ति भोजन करता है, तो जिन बर्तनों में भोजन करता है वह भी साफ सुथरे चाहता है, बर्तन चाहे स्टील के हों, प्लास्टिक के हों, पीतल के हों, चांदी के हों या स्वर्ण के। यदि बहुमूल्य बर्तन जो गंदे रखे हैं झूठे हैं तो व्यक्ति उन बर्तनों में भोजन करना नहीं चाहेगा स्वच्छ बर्तन मिट्टी के भी चल जायेंगे। व्यक्ति बर्तन, मकान, दुकान, वस्त्र, आभूषण, तन आदि सभी को साफ करता है क्योंकि गंदगी उसे पसंद नहीं है। कान में यदि मल हो तो 1 मिनट भी शांत नहीं बैठता तुरंत ear bud लेकर कान साफ करता है, आँखों में कीचड़ आ रहा हो तो तुरंत जल से उन्हें साफ करता है, नाक-कान-आँख-गला साफ करता है, क्यों? क्योंकि स्वच्छता इसका स्वभाव है, गंदगी में रहना इसका स्वभाव नहीं है।

महानुभाव! यदि कोई गंदगी में रह रहा है तो उसकी वह मजबूरी हो सकती है पुनः रहते-रहते अभ्यास हो गया, आदत पड़ गयी वो अलग बात है किन्तु गंदगी नहीं चाहता। व्यक्ति सब कुछ साफ करता है, किंतु जो वस्तु साफ करना चाहिये उसे साफ करना भूल जाता है। ऐसी क्या चीज है जिसे साफ करना चाहिये? और भी अन्य दस प्रकार की शुद्धियाँ हैं जाप की शुद्धि, माला की शुद्धि, काल की शुद्धि आदि व्यक्ति ये शुद्धि अपने चित्त को शुद्ध करने के लिये करता है। चित्त शुद्धि में ये बाह्य शुद्धियाँ अंतरंग कारण बन सकती हैं इसलिये वह इन सभी शुद्धियों को करता है। चित्त की शुद्धि परमावश्यक है। यदि अंतःकरण शुद्ध नहीं है तो बाह्य शुद्धियाँ व्यर्थ हैं, निरर्थक हैं वे सार्थक और सफल नहीं मानी जा सकती।

अंतःकरण शुद्ध करने के लिये सर्वप्रथम यह विचार करें कि अंतःकरण अशुद्ध किससे हो रहा है उन अशुद्धियों को हटाकर अलग करें। स्थान को शुद्ध करने के लिये व्यक्ति सबसे पहले झाड़ू से गंदगी हटाता है, उसके बाद धुलाई करता है, उसके बाद रूमफ्रैशनर का प्रयोग करता है। सबसे पहले काम करता है गंदगी को हटाने का। हमारा चित्त भी शुद्ध हो, स्वच्छ हो, निर्मल हो इसके लिये सर्वप्रथम जिससे चित्तमलिन होता है उन गंदगियों को दूर करना है। मुख्यतया ये चित्त चार वस्तुओं से मलिन होता है। यूँ तो चित्त को मलिन करने वाले कई विचार हो सकते हैं किन्तु मुख्यतया चार बाते हैं। इन पर विचार करें शायद ये अशुद्धि के प्रमुख आधार हों। विचार करके इन विकारों को हम दूर भी कर सकते हैं।

1. कामना-इच्छा कहो, अभिलाषा, याचना या माँगना कहो, ये चित्त को सबसे ज्यादा मलिन करती है। जब भी व्यक्ति का मन खराब होता है तो कारण यही होता है कि जो वस्तु चाहता था, वह मिल नहीं पायी। जब तक मिलने की गुंजाइश है तब तक मन उसी में लगा

रहेगा जल्दी से जल्दी मिले। जब तक उसमें तीव्र आसक्त है तब तक कहीं और मन नहीं लगता, न भोग में न उपभोग में, न योग साधना में न संयम में, न ध्यान में न तप में, वह अस्थिर हो जाता है, उसके परिणाम संक्लेशित होने लगते हैं। ज्यों-ज्यों इच्छा तीव्र होती है, कामना तीव्र होती है चाहे कामना कामिनी की हो, चाहे धन की हो, चाहे पद-प्रतिष्ठा आदि किसी की भी हो यह कामना चित्त को खण्डित करती है, दूषित करती है।

यदि कामना पूर्ण नहीं हुयी, अहंकार टूटा तब भी दु:ख होता है यह कामना संक्लेशता का निमित्त है। वांछा-कांक्षा-अपेक्षा आदि सब दु:ख की जननी हैं। जिसने इसको दूर कर दिया उसकी गंदगी का एक कारण कम हो गया। अगला है-

2. वासना-वासना का आशय है किसी दूसरे पदार्थ के साथ रमण करने की इच्छा। वह पदार्थ चैतन्य है या अचैतन्य, उसके साथ रंजायमान होने की जो तीव्रता मन में होती है वह वासना होती है। वासना की अग्नि में जलने वाला व्यक्ति नदी समुद्र में डूब भी जाये तब भी शांति प्राप्त नहीं करता। वासना की अग्नि से दहकने वाला व्यक्ति इतना जलता है जितना कि अंगार भी नहीं जलाता। वासना की तपन को वातानुकूलित कक्ष भी शांति नहीं दे पाते। वासना से पीड़ित मनुष्य का मन सदैव दूषित रहता है दु:खी रहता है। आचार्य अजितसेन सूरि जिनका उपाधि गत नाम 'वादीभसिंह सूरि' अर्थात् वादी रूपी हाथी को वश में करने के लिए जो सिंह के समान हैं उन्होंने छत्रचूड़ामणि ग्रंथ में लिखा

विषयासक्त-चित्ताणां गुण: को न नश्यति।
न वैदुष्यं न मानुष्यं नाभिजात्यं न सत्यवाक्।।

छत्रचूड़ा. (आ. अजितसेन स्वामी)

जिसका मन विषय-वासना में लगा है उसका कौन सा गुण शेष रह जाता है? उसके न विद्वत्ता बचती है न मनुष्यता और ना ही

सत्यता व कुलीनता। वासना से पीड़ित मनुष्य जिस वियोग में तड़पता है उसके बिना उसे बैचेनी होती रहती है क्योंकि उसे सिर्फ वही और वही चाहिये। ये वासना चित्त को मलिन करती है इसलिये वासनायुक्त चित्त प्रभु भक्ति भी करे तब भी आनंद नहीं आता। जिस तरह जिसके चित्त में कामना का बाण लगा है, वह जैसे तड़पता रहता है ऐसे ही वह वासना जो चारों तरफ से बदबू दे रही है उसे आनंद की महक नहीं आ सकती। गंदगी के कुण्ड में गिरे व्यक्ति को कोई पुष्प दे भी दे तो उस एक पुष्प से क्या होने वाला है ऐसे ही वासना की दुर्वास नि:संदेह चित्त को बहुत मलिन करती है वह उसके रहते कोई भी पुण्य का कार्य करे उसे उस आनंद की प्राप्ति नहीं होती। व्याकुल चित्त में आनंद प्रस्फुटित नहीं होता। वासना की काई चित्त पर ऐसे जम जाती है जो साधारण धुलाई से नहीं वरन् खुरच कर अलग करनी पड़ती है, यदि वासना की काई को अलग नहीं किया तो चित्त को नि:संदेह दुर्गंधित, मलिन कर देती है। भला आदमी वासनायुक्त चित्त वाले व्यक्ति के पास बैठना भी नहीं चाहता। उसकी आँखों से पता चल जाता है कि वासना टपक रही है या वात्सल्य। अगली बात है-

3. तृष्णा-तृष्णा उस नागिन की तरह से है जो एक बार डस ले तो डसा व्यक्ति चैन से बैठ नहीं पाता। तृष्णावान् भी एक जगह नहीं बैठ पाता वह चारों तरफ से अपनी पूर्ति हेतु भागता फिरता है। तृष्णायुक्त चित्त भी बिच्छू के जहर की तरह से है। एक वस्तु को पूर्ण करने के लिये दूसरी वस्तु प्राप्त की, पुन: तीसरी, करते-करते कभी माँग पूर्ण नहीं होती नयी-नयी इच्छा उत्पन्न होती रहती है। तृष्णा के जाल से निकल पाना बड़ा मुश्किल होता है। अगला कारण है-

4. निराशा-व्यक्ति जब-जब निराश होता है तब-तब उसका मन अच्छे कार्यों में नहीं लगता। निराश हुआ व्यक्ति बस अपनी ही नजरों में गिरने लगता है। जो बाहर गिर जाये, दूसरों की नजरों में गिर जाये उसे तो

कोई दूसरा आकर उठा सकता है किन्तु जहाँ वह सिर्फ अकेला है वहाँ यदि गिरता है तो कौन उठाये। यदि वह कमरे में गिर गया, कमरा बंद है तो जब भी उठेगा स्वयं ही उठेगा कोई बाहर से नहीं आयेगा, फिर भी कदाचित् वह व्यक्ति फोन कर दे, दूसरा व्यक्ति दरवाजा तोड़कर अंदर आ सकता है, उसे उठाने में सहयोगी बन सकता है किन्तु जो व्यक्ति अपने अंदर से गिर गया है, अंदर से टूटने लगा है, सब कुछ चला गया, हताश निराश हो गया वह सोचता है अब मैं ऐसा जीवन जीकर क्या करूँगा, ऐसा जीवन उसे और कुण्ठा में ले जाता है। निराश हुये व्यक्ति अवसाद की स्थिति में चले जाते हैं। यदि उसे कोई समझाये कि एक बार पराजित/अनुत्तीर्ण हुये हो आगे पुनः प्रयास करना अवश्य सफलता मिलेगी, आज नहीं तो कल अवश्य मंजिल तक पहुँच जाओगे, किन्तु वह कहता है बस! अब मैं टूट गया, अंदर से टूट गया हूँ मेरा जीवन बिखर गया मैं जी नहीं सकूँगा। वह हारी-हारी बातें करता है।

देखो! यदि कोई बाँस गढ़ा हुआ है उस बाँस पर कोई कपड़ा लटका हुआ है। कपड़ा बीच में से फट जाये, दो टुकड़े हो जायें तो उस कपड़े के फटने से बाँस का कुछ भी नहीं हुआ किन्तु जब अंदर से बाँस टूट जाये तो वह लटका कपड़ा भले ही फटा नही है बाँस झुक गया वह साबुत कपड़ा बाँस को खड़ा नहीं कर सकता, बाँस को खड़ा करने में कपड़ा सक्षम नहीं है अब तो बाँस में ही कोई खच्चर बांध करके बांस को अंदर से सीधा किया जाये तब तो सार्थक है। इंसान कई बार अंदर से टूट जाता है इतना टूटता जाता है कि घर वाले समझायें तब भी संभल नहीं पाता।

कई बार उसे सकारात्मक रूप से समझाते हैं कि आज जो तुम्हें मिला है सैकड़ों लोगों को इतना भी नहीं मिल पाता, तुम हिम्मत क्यों हारते हो, तो पुनः किसी की बात यदि वह मान लेता है तो अंदर से उत्साह भरके पुनः प्रयास करता है और सफलता को प्राप्त भी कर

लेता है। कई बार व्यक्ति दसों-बीसों बार असफल होकर आगे प्रयास करते-करते अंततः सफलता प्राप्त कर लेते हैं। जैसे चींटी दीवार से अनेकों बार गिरती है और चढ़ती है किन्तु वह निराश नहीं होती है, आखिर सफलता को प्राप्त कर ही लेती है और जो निराश होकर बैठ जाते हैं वे सफलता प्राप्त नहीं कर पाते।

महानुभाव! इसी तरह आपको अपने जीवन में अनेकों बार असफलतायें भी मिली होंगी, ऐसा नहीं है कि सफलता एक बार में ही मिल जाये कई बार असफलता का मुख देखना पड़ता है किंतु अंत में वह सफलता उसके चरण चूम ही लेती है। असफलता भी उससे ऊब जाती है, वह भी आने में शर्माती है। जो हिम्मत हार ही नहीं रहा फिर सफलता भी क्यों उससे पर्दा करेगी वह भी उसका स्वागत कर ही लेती है।

महानुभाव! कामना, वासना, तृष्णा, निराशा ये चित्त को अशुद्ध करने वाले चार कारण हैं इन चार कारणों से बचो। आज बस इतना ही।

॥ श्री शांतिनाथ भगवान की जय ॥

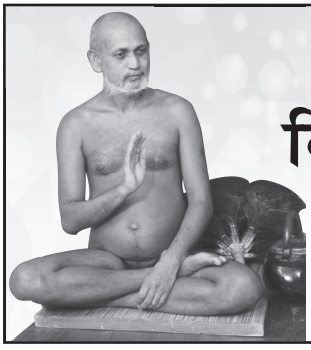

किसकी शोभा किससे

महानुभाव! यदि किसी का सौन्दर्य निखारना है तो उस सौन्दर्यता के बाधक जो हैं पहले उन्हें दूर करें। कोई नारी रत्न है, चेहरा सुंदर है किन्तु दन्तावली विकृत है दूर-दूर या तिरछी है तो सुंदरता निखारने से पूर्व असुंदरता को दूर करें। जो प्रतिकूलता के कारण हैं उन्हें दूर करें और फिर सकारात्मकता को रूप दें। नकारात्मक पदार्थ, नकारात्मक विचार, नकारात्मक वस्तु को दूर करने पर ही सकारात्मक कार्य प्रारंभ हो सकता है। किसान खेत में बीज बोने के पहले खेत में पड़े कंकर पत्थर को बीनकर अलग करता है, झाड़ झंकर अलग करता है उसके उपरांत बीज बोता है। कपड़े रंगने वाला रंगरेज पहले वस्त्र को साफ करता है पुनः गर्म पानी में रंग डालकर रंगता है। सिद्ध ये हुआ कि हमें पहले उस गंदगी को दूर करना है। शिखर पर यदि पेन्ट करना हो तो पहले उस पर जमी काई को खुरच कर अलग करना पड़ेगा उसके बाद white wash/paint किया जाता है। अच्छे संस्कारों को यदि प्राप्त करना है तो कुसंस्कारों को अलग करना पड़ेगा, तब अच्छे संस्कार प्राप्त होंगे।

महानुभाव! इसी तरह चित्त पर जो कुत्सित विचार, कुत्सित संस्कार, कुत्सित वस्तुओं ने स्थान जमा लिया है, पहले उनको दूर करना पड़ेगा। उन्हें दूर करने के उपरांत पुनः चित्त में विशुद्धि बढ़े, चित्त निर्मल हो, चित्त में आनंद की अनुभूति हो फिर ऐसा उपाय किया जा सकता है। कोई महिला गर्म तवे को ठंडा कैसे

करेगी? यदि वह तवा गैस पर रखा है तो पहले गैस बंद करेगी तवे को उठाकर ठंडे स्थान पर रख दे तो वह ठंडा हो जायेगा, यदि गैस पर रखे रखे ही पानी डालेगी तो शनैः-शनैः पानी भी गर्म हो जायेगा, ऐसे ही हमारे चित्त पर अशुद्धि के संस्कार हैं, अशुद्ध विचार हैं उन्हें दूर करें। पूर्व में देखा था हमारे चित्त को कामना, वासना तृष्णा व निराशा मुख्य रूप से मलिन करती हैं। इन चार को दूर कर दिया अब विशुद्धि कैसे बढ़ायें? विशुद्धि के लिये सहज होना पड़ता है। यूँ तो विशुद्धि बढ़ाने के लिये बहुत निमित्त हो सकते हैं कोई पूजा करके, कोई जाप लगाकर, कोई स्वाध्याय से, शील व्रत-उपवास, यात्रा, सेवा आदि अनेक कार्यों द्वारा विशुद्धि बढ़ाते हैं किन्तु फिर भी हम चित्त को निर्मल करने के लिये आज मुख्य चार बातों पर चर्चा करते हैं। वे चार बाते हैं-

1. चित्त में क्षमा का भाव-हम अपने चित्त को क्षमा से विभूषित करें। सामने वाले की गलती पर यदि हमारे मन में किसी के प्रति क्रोध का, बैर का भाव जब आता तब हम संकल्प लेकर बैठ जायें कि हम क्रोध नहीं करेंगे, क्षमा भाव रखेंगे कोई कितनी बड़ी भूल भी कर दे, आज तो हमारा नियम है हम क्षमा कर देंगे। तुंकारी की कहानी जैन शास्त्रों में आती है वह क्रोध करती है, क्रोध के कारण वह घर छोड़कर चली गयी। वह 'तू' शब्द से बहुत चिढ़ती थी, उसने विवाह के पश्चात् अपने पति से पहले ही कह दिया कि मुझे कभी 'तू' शब्द से नहीं बुलाना। एक बार उसका पति रात्रि में बाहर गया हुआ था, आने का समय वह अपनी पत्नी से तय कर गया था कि इतने बजे तक आ जाऊँगा, किन्तु वह अपने समय से थोड़ा लेट हो गया। वह जब आया उसने दरवाजा खटखटाया, पत्नी ने दरवाजा नहीं खोला, उसका नाम पुकारा तब भी नहीं सुना, फिर उसके मुँह से निकला 'तुंकारी' दरवाजा खोलो, उसने ज्यों ही नाम सुना उसे तीव्र गुस्सा आया और रात्रि के 12 बजे ही घर छोड़कर चली गयी,

रात में चोर-बदमाशों ने उसे लूट लिया, और बंदी बनाकर रखा, वह वहाँ से भाग गयी, पुनः भीलों के द्वारा पकड़ी गई, वहाँ से बची तो एक देवी जो उसके बाल नोंच-नोंचकर रक्त निकालती इस प्रकार वह असह्य पीड़ा सहती। पुनः अपने भाई के द्वारा वह वहाँ से बचाकर लाई गई व अपने पति के यहाँ चली गई। क्रोध का यह परिणाम देखकर वह तुंकारी क्षमाशील बन गयी।

एक बार लाक्षा तेल लेने के लिये एक सेठ उसके यहाँ आया, सेठ ने तेल का घड़ा उठाया, घड़ा फूट गया, सेठ ने क्षमा माँगी, वह गुस्सा नहीं हुयी, दूसरा घड़ा दे दिया, दूसरा घड़ा भी फूट गया, तीसरी चौथी बार करते-करते सात घड़े उस लाक्षा तेल के फूट गये किंतु उसे गुस्सा नहीं आया। सेठ ने पूछा मुझे आश्चर्य होता है तुम्हें गुस्सा नहीं आता, वह बोली-मैं क्रोध का परिणाम भुगत चुकी हूँ इसलिये मैंने संकल्प ले लिया है मैं हर स्थिति में क्षमा भाव धारण करूँगी। यदि पूरे घड़े भी फूट जायें तब भी मैं क्षमा कर दूंगी। यह संकल्प मात्र शब्दों से नहीं वरन् अन्तरात्मा से लिया है कि मैं कभी क्रोध नहीं करूँगी।

महानुभाव! यदि आप भी ऐसा संकल्प ले लें कि एक घंटे के अंदर चाहे कोई भी घटना घट जाये पर मैं क्रोध नहीं करूँगा, क्षमा भाव धारण करूँगा, यूँ ही घंटे या 2, 3 घंटे पुनः समय बढ़ाते-बढ़ाते एक दिन आप स्वयं महसूस करेंगे कि आप देवतुल्य हो गये। आपका चित्त भी सदा आनंदित रहेगा। यह चित्त की निर्मलता को बढ़ाने वाला पहला कारण है क्षमाभाव।

2. दया का परिपालन-क्रूरता से चित्त अशुद्ध होता है। अतः संकल्प लें कि मैं करुणा का पालन करूँगा। कोई भी प्रसंग मेरे सामने आयेगा उस प्रसंग को देखकर के मैं अपने परिणाम अनुकंपामय बनाऊँगा। मैं किसी जीव के साथ ऐसा व्यवहार नहीं करूँगा जिससे उसकी आत्मा दुःखे। उसकी आत्मा दुःखेगी तो मेरी

आत्मा में भद्रता नहीं आ सकेगी, मेरा चित्त निर्मल नहीं हो सकेगा। जब मैं किसी के स्वच्छ जल को गंदा करूँगा तो वह शांति ने नहीं बैठेगा, वह भी मेरे जल को गंदा करेगा। दूसरे के चित्त में अशुद्धि फैला करके अपने चित्त में शुद्धि बढ़ायी नहीं जा सकती। कोई व्यक्ति कई बार पाप करके भी आनंदित होता है तो वह रौद्र ध्यान बन जाता है, हिंसानंदी, मृषानंदी, चौर्यानंदी व परिग्रहानंदी। क्योंकि पापों को करके चित्त शुद्ध नहीं होता चित्त में क्रूरता बढ़ जाती है। इस चित्त की शुद्धि का दूसरा उपाय है सब जीवों के प्रति दया भाव। यही सोचो जैसे मेरी आत्मा है वैसे ही प्राणी मात्र की आत्मा है। मुझे किसी के कटु शब्द, कटुव्यवहार अच्छा नहीं लगता तो मैं भी वे वचन, वह व्यवहार दूसरों के साथ नहीं करूँगा।

जब मैं नहीं चाहता कि कोई मेरे बारे में बुरा सोचे तो मैं भी किसी के बारे मे बुरा न सोचूँ। दीन-दु:खी प्राणी मात्र के प्रति सभी सुखी रहें जब ऐसी करुणा का भाव जाग्रत होता है, तब कोई मेरी भावना से सुखी हो पाये या न हो पाये, उसका सुख-दुख उसके कर्म पर निर्भर है किन्तु मैं भावना अच्छी रखूँगा, मैं रहमदिली रखूँगा जब ऐसी दया का भाव मन में आता है तब फिर कोई मारने वाला भी आ जाए तो उसको भी मारने का भाव मन में नहीं आयेगा। यदि सर्प भी तुम्हें डसने आ जाये और उसे देखकर तुम्हारे मन में उसके प्रति दुर्भाव न आये, विश्वास हो, फिर सर्प तुम्हें काटेगा नहीं यदि तुम्हारे मन में अहिंसा का भाव है।

आप जानते हैं वे अमरचन्द्र दीवान जिसने भूखे शेर को जलेबी खिलायी। उनकी परीक्षा थी पर वे घबरायें नहीं कहा-हे वनराज! हे पंचानन! यदि तुम्हें अपनी भूख शांत करनी है तो ये जलेबी खाओ और तुम्हें मेरे प्राण लेने हैं तो मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूँ, मैं किसी और का घात नहीं कर सकता। उस शेर ने चुपचाप वे जलेबियाँ खा ली और आँखबंद करके बैठ गया। अहिंसा की

आवाज, दया की आवाज, मन की आवाज सामने वाला अवश्य सुनता है। एक बार कुतुबदीन राजा शिकार करने गया, जंगली पशु उससे डरकर भागते जा रहे थे, उस राजा का मंत्री जैन था, अहिंसक था उसने आवाज लगायी-हे जंगल के पशु-पक्षियों! मत दौड़ो, जब तुम्हारा रक्षक ही भक्षक बनता जा रहा है तब तुम्हारे लिए अन्य कौन शरण है। उसकी ऐसी आवाज सुनकर वे जानवर ठहर गये। राजा ने कहा मंत्री तुमने ऐसा क्या मंत्र किया कि ये सभी ठहर गये। महाराज! अहिंसा एक ऐसा मंत्र है जिसकी भाषा सब समझते हैं। आपके मन में हिंसा का परिणाम है, आपकी भावना उन तक पहुँच रही है वे अपने प्राण बचाने दौड़ रहे थे, मेरी भावना में दया है, अहिंसा है इसलिये जब मैंने कहा तो वे रुक गये। उसी दिन से उस राजा ने नियम ले लिया कि मैं निरपराध जीवों का कभी घात नहीं करूँगा। जिस दिन नियम लिया, उस रात उसे स्वप्न आया उसके इष्ट आराध्य ने कहा आज तूने मेरी आज्ञा का पालन किया है मैं तुझसे संतुष्ट हूँ, मेरे बंदों पर तूने रहम किया है, अहिंसा का संकल्प लिया तेरी सभी कामनायें पूर्ण होंगी। महानुभाव! दया भी चित्त की विशुद्धि को बढ़ाने वाली होती है।

3. समता-संसार में कोई व्यक्ति अच्छा करता है, कोई बुरा आप अपने परिणाम क्यों खराब करते हो, सबके प्रति समभाव रखो। सूर्य चंद्रमा कभी पक्षपात नहीं करते सूर्य का प्रकाश, चंद्रमा की चांदनी सबके लिये है चाहे उसमें कोई चोरी करे या कोई जाप लगाये, वह रोशनी पापी-पुण्यात्मा के घरों का भेद नहीं करती वह अपनी रोशनी सिकोड़ते नहीं, वृक्षों की छाया सबके लिये है, मेघ की वृष्टि सबके लिये है, आकाश सबको स्थान देता है क्या हम ऐसा नहीं कर सकते। सबके प्रति समता का भाव रखो चाहे कोई अच्छा करे या बुरा, अच्छा कहे या बुरा। तुम अच्छी भावना भाओ, अच्छी भावना का फल अच्छा ही मिलेगा। समता से चित्त में विशुद्धि बढेगी रागद्वेष

वृद्धिंगत नहीं होंगे अतः सबके प्रति समता का भाव रखो। संसार में मेरा कोई शत्रु-बैरी नहीं अहित करने वाला नहीं, मेरा हित-अहित मेरे पुण्य-पाप से होता है सामने वाला क्या कर सकता है। समतामय परिणामों से निःसंदेह विशुद्धि बढ़ती है।

4. संतोष वृत्ति-जीवन में हमें जो भी शुभ प्राप्त हुआ है वह हमारे पुण्य से मिला है, जीवन में जो भी अशुभ मिला वह हमारे पाप से। जीवन में हमें जो भी मिला उसमें गिला-शिकवा न करो। पाप को दूर करने की कोशिश करो। अच्छे के लिये कभी मन में अहंकार का भाव मत लाओ। पुण्योदय में भी यही भावना भाओ भगवन् मेरे साथ-साथ सभी का अच्छा हो, इस अच्छे में भी आसक्ति नहीं हो। 'यथालब्ध संतोषं' चित्त जब संतोषी हो जाता है, ठहर जाता है तब चित्त में शांति आती है। तब यदि कोई कहता है भैया! मैं आपको कुछ देना चाहता हूँ, वह हाथ जोड़ता है मुझे अभी आवश्यकता नहीं है, बस पर्याप्त है। यदि मन में कुछ पाने की इच्छा रहती है, वह न मिले तो बड़ा दुःख होता है। पाने की इच्छा ही न होना, संतोष की भावना आ जाना यह उसके आनंद के लिये होती है वह ऐसी चिरंजीविनी है ऐसा जल है कि वह सुख और शांति के वृक्ष को सूखने नहीं देता। कहा भी है-

संतोष पीयूषरसावसिक्त, चित्तस्य पुंसोऽत्र यदस्ति सौख्यम्।
संतोषहीनस्य न कौशिकस्य न वासुदेवस्य न चक्रिणस्तत्॥

संतोषरूपी जल से अभिसिक्त चित्त वाले पुरुष को यहाँ जो सुख होता है वह सुख संतोषरहित इन्द्र, नारायण व चक्रवर्ती को नहीं प्राप्त होता है। संतोष के जल से चित्त की भूमि स्वतः ही निर्मल होती जाती है।

महानुभाव! ये चार बातें क्षमा, दया, समता व संतोष चित्त शुद्धि का महान कारण हैं। क्षमा ऐसी बाड़ है जिससे गंदगी आ न पाये, दया एक बुहारी है जिससे गंदगी टिक न पाये बाहर निकाल

कर फेंक दे, समता ऐसा जल है जिससे बार-बार सफाई होती चली जाती है। संतोष वृत्ति वह पोंछा लगा दिया जो गंदगी का गीलापन आर्दता को भी नहीं रहने देती। ये चार बातें मुख्यतया चित्त की शुद्धि के लिये हैं उन्हें जीवन में अंगीकार करने से जीवन का आनंद आयेगा यह आनंद हमने लिया है, हमें विश्वास है आपको भी आयेगा, यदि आप इन्हें धारण करने की कोशिश करेंगे। आपका चित्त भी निर्मल हो, विशुद्ध हो इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....।।

॥ श्री शांतिनाथ भगवान की जय ॥

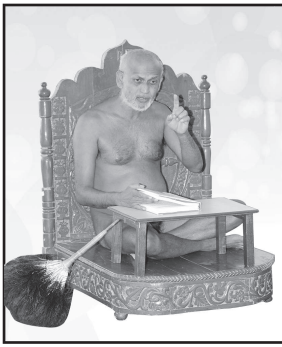

भय के कारण

महानुभाव! जीवन एक ऐसा सुनहरा अवसर है, जिसे प्राप्त करके संसार का प्रत्येक प्राणी आनंद व सुख भोगना चाहता है। चाहता तो ये है कि सुख और आनंद सतत प्रवाही नदी की तरह से चेतना के प्रदेशों में सदैव विद्यमान रहे। किन्तु जीवन में कई बार ऐसी प्रतिकूलतायें आती हैं जिनके कारण उसका आनंद छिन जाता है। चाहे पर्याप्त से भी ज्यादा भोग सामग्री हो, प्रचुर मात्रा में उपभोग सामग्री हो, सब कुछ अनुकूल हो किंतु फिर भी यदि जीवन में कोई भय लगा हो तो व्यक्ति निराकुल नहीं बैठ सकता। उसके चित्त में सदैव उस भय से संक्लेशता रहती है। और भयभीत व्यक्ति किसी भी वस्तु का समीचीन आनंद नहीं ले सकता।

प्राणी के जीवन में भय क्यों होता है? कई बार व्यक्ति मृत्यु से डरता है, कोई अपने अपयश से डरता है, कोई व्यापार में घाटे से डरता है, कोई रोग से सबके अलग-अलग अनेक कारण हैं, किंतु हम भय के मुख्य चार कारणों पर चर्चा करेंगे। आचार्यों ने भय के चार कारण बताये, यद्यपि और भी बहुत सारे कारण हो सकते हैं किन्तु ये चार मुख्य कारण हैं जिनसे आत्मा में भय का संचार होता है। आचार्य महोदय लिखते हैं-

चउ-हेऊ भयस्स, संकं कवडं हु सत्तिहीणदं च।
तच्चणाणस्सऽभावं, चागिऊणं णिब्भयो होज्ज॥

आचार्य महोदय कह रहे हैं ये चार कारण भय के हैं इन्हें त्यागकर

व्यक्ति को निर्भय होना चाहिये, जब तक इन चार कारणों का त्याग नहीं करता है तब तक निर्भीकता निर्भयपना उसके चित्त में नहीं आता। वे चार कारण जो निर्भयता के अंकुर को उत्पन्न नहीं होने देते, वे क्या कारण हैं जिसके कारण निर्भयता की मूसलाधार वर्षा उसके चित्त में नहीं हो पाती? वे चार कारण कौन से हैं जिनके कारण निर्भयता का सूर्य आत्मा के क्षितिज पर उदित नहीं हो पाता? वे चार कारण कौन से हैं जिनके कारण निर्भयता की सुगंध आत्मा के प्रदेशों में नहीं फैल पाती? वे चार कारण कौन से हैं जिनके कारण वह निराकुल चित्त से आनंद का अनुभव नहीं कर पाता? आचार्यों ने पहला कारण बताया-

1. शंका-व्यक्ति के चित्त में जब शंका का आविर्भाव होता है, शंका उत्पन्न होती है तब व्यक्ति सदैव शंकित रहता है। शंकित व्यक्ति कभी भी निर्भय नहीं हो सकता। आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी जी ने समयसार में लिखा है- **''णिस्संका णिब्भया चेदा''** जो निशंक है वही निर्भय हो सकता है शंकाशील व्यक्ति कभी निर्भय नहीं हो सकता। जिसे किसी भी चीज में शंका हो चाहे फिर उसके साथ उसके अंगरक्षक ही क्यों न हों, वह सोचता है इनमें से कोई मुझे दगा तो नहीं दे जायेगा, अथवा जहाँ मैं बैठा हूँ ये छत कमजोर तो नहीं है कहीं मेरे ऊपर गिर तो नहीं जायेगी उसे किसी भी प्रकार की शंका हो सकती है।

कुयें के घाट पर बैठा है, अरे! कहीं पैर फिसल न जाये मैं गिर गया तो, जब कहीं न कहीं मन में शंका उठती रहती है तो ऐसा व्यक्ति निर्भयता को खो देता है। घर वाले हों या बाहर वाले हों, भोज्यपदार्थ हों या कोई उसके सुखाभिलाषी जन जो सदैव उसके लिये शुभ भावना भाते हैं, उसके लिये जापादि करते हैं उसे उनमें भी शंका हो जाती है कहीं ये मेरे बुरे के लिये तो नहीं कर रहे, कहीं इनसे मेरा अनिष्ट न हो जाये। जब शंका मन में बैठ जाती है तब सबसे बड़ी खतरनाक बीमारी बन जाती है। उस शंका का समाधान करना बड़ा मुश्किल होता है।

रोग का निदान तो डॉक्टर-वैद्य-हकीम कर देते हैं, शंका का समाधान करना बहुत कठिन होता है, कई बार जिसके प्रति शंका होती है वह व्यक्ति ही आकर कह देता है भैया! तू क्या चाहता है, तू कैसे नि:शंकित हो सकता है, मैं क्या कहूँ, किसकी सौगंध खाऊँ तू अपना मन शांत कर, मुझ पर शंका क्यों करता है। वह कहता है-मुझे तेरी प्रवृत्ति पर शंका होती है, तू अच्छा कार्य भी करता है तो मुझे अंदर से लगता है कि कुछ गड़बड़ कर रहा है। शंका एक ऐसी चीज है जिसके रहते हुये निर्भयता आ नहीं सकती।

दो व्यक्ति किसी दुकान पर दूध पीने गये। उस दूध की कढ़ाई में छिपकली गिर गई। गिरते ही दुकानदार ने उसे निकाल दिया। एक व्यक्ति ने यह देख लिया उसने तो दूध नहीं पिया किन्तु दूसरे व्यक्ति ने दूध पी लिया। जब उसने पहले व्यक्ति से दूध ना पीने का कारण पूछा तो उसने कहा इसमें छिपकली गिर गई थी अब तो उसे भ्रम हो गया शंका हो गई कि छिपकली तो मेरे पेट के अन्दर चली गयी, अब तो बहुत मुश्किल है। वह रोने लगा, चिल्लाने लगा, तड़पने लगा डॉ. आये कहा कुछ नहीं है, यदि तुम्हारे मुँह में जाती तो तुम्हें एहसास होता। वह बोला हाँ मुझे अहसास हुआ, अरे भाई! तुम छिपकली निगल नहीं सकते यदि सही की छिपकली होती तो ये वास्तव में मर गया होता, जहर फैल गया होता। पर उसकी शंका बढ़ती गयी और सोच-सोच कर बीमार हो गया। खूब डॉक्टर, हकीम आये किंतु कोई ठीक न कर पाया, पेट में तो नहीं पर उसके मन में छिपकली घुस गयी।

एक डॉक्टर आया बोला मैं देखता हूँ-एक बाल्टी रखी उसके सामने, उसमें पहले ही मिट्टी डलवा दी और एक प्लास्टिक की छिपकली डलवा दी। उसने कहा मैं तुम्हें अभी उल्टी करवाता हूँ। अगर छिपकली होगी तो निकल जायेगी, उस डॉक्टर ने क्या किया उसके पेट पर गीला कपड़ा रखकर के कंघा फेरता रहा और पूछा कुछ

अहसास हो रहा है। वह बोला हाँ-हाँ छिपकली रेंग रही है, ठीक है अभी निकलती है और पुनः उसे खूब सारा पानी पिलाया और कुछ ऐसी चीज सुंघायी जिससे उल्टी हो जाये और जैसे ही उल्टी हुयी तो उस उल्टी में मिट्टी में सब मिक्स हो गया। लकड़ी से देखा गया पूछा ये तो नहीं है, बोला हाँ ये ही है। मेरे तो प्राण बच गये, बहुत अच्छा हुआ। सब डॉक्टर कह रहे थे कि नहीं है, अरे जब मैं अपने पेट में अनुभव कर रहा हूँ तो कैसे कह दूँ कि नहीं है। अनुभव की बात कभी झूठी नहीं होती देखा सबने, जब थी तभी तो निकलकर आ गयी, डॉक्टर ने कहा तुम ठीक कह रहे थे, बाकी सभी झूठे थे। क्योंकि जिसे शंका हो जाती है, भ्रम हो जाता है तो उस रोग को दूर करने का कोई और दूसरा उपाय नहीं।

शंका के बादल जब आसमान में छाते हैं तब निर्भयता का सूर्य दिखायी नहीं देता छिप जाता है। जब आकाश में श्याम बादल छाये हुये हों, सूर्य छिप गया हो उस समय आकाश में इन्द्रधनुष दिखाई नहीं देता धूप में ही दिखाई देता है या पौधों में जब पुष्प लगे ही नहीं हैं तो खुशबू कहाँ से आयेगी ऐसे ही निर्भयता तब तक नहीं आती जब तक उसका चित्त निशंक नहीं होता। जब सर्वत्र से निःशंकित हो जाता है तो सर्व चिन्तायें भाग जाती हैं और शंका जब रहती है तो पल-पल में उसकी आँख खुल जाती है, वह सो नहीं पाता कहीं ऐसा न हो जाये, कोई आ न जाये, कोई मार न दे, लूट न ले। वह निर्भय नहीं हो पाता।

2. कपट-छल कहो, मायाचारी या धोकाबाजी। जिस किसी व्यक्ति ने छल-कपट किया है, बेईमानी से अपने हक को न लेकर दूसरों का हक भी छीना है, तो वह व्यक्ति सदैव भयभीत रहता है। चोरी की हो तो पकड़ने का भय रहता है कोई चीटिंग की हो तो सब जगह अपयश का भय रहता है। व्यक्ति काम करता तो है मायाचारी का, उस समय तो कर लिया साहस करके किन्तु यावज्जीवन वह दुःखी रहता

है, भयभीत रहता है। उसे कोई कह भी दे तुम चिंता न करो, किन्तु फिर भी उसके मन में वह छल की शल्य कांटे की तरह चुभती रहती है, भय बना रहता है उसके आत्मप्रदेशों में निर्भीकता नहीं आ पाती। जिसके साथ छल कपट किया है, न केवल उससे वरन् सभी से डरता है कहीं मेरा छल उसने सभी से कह न दिया हो।

बस जिसने भी छल कपट किया है उस छल के छाले उसकी आत्मा में पड़े रहते हैं वह कपटी स्वयं अंदर ही अंदर जलता रहता है सोचता है मैं अपने छल-कपट को कैसे ढांकूँ। कई बार तो ऊपर से मुस्कुराता रहता है और अंदर ही अंदर रोता रहता है। उसमें निर्भयपना नहीं होता, उसे लगता है जो छल मैंने किया है वह छल मुझे चैन से बैठने नहीं देगा। उसका छल उसे पल-पल भयभीत करता है। उसे हवा भी डरावनी लगती है, अपनी परछाई में भी भूत का साया नजर आता है। वह सदैव डरा ही रहता है। अगली बात है-

3. कमजोरी-जब शक्ति की हीनता होती है, शरीर कमजोर है, मन बल कमजोर है, आत्मबल कमजोर है, दीनहीन है उस व्यक्ति को भी छोटी-छोटी बातों से डर लगता है मैं मर गया तो, गिर गया तो, औषधि ने उल्टा काम कर दिया तो, नया रोग लग गया तो। जब शक्ति हीन होती है तब छोटी-छोटी बात भी सहन नहीं होती। कमजोर व्यक्ति साहस का कोई भी कार्य नहीं कर पाता यहाँ तक कि कमजोर व्यक्ति के सामने कोई उच्च स्वर में बोले तो वह कांप जाता है। कहीं हाथी की चिंघाड, शेर की दहाड़ सुन ले तो मूर्छित ही हो जाये। जो शक्ति से हीन होता है वह थोड़ी-थोड़ी बातों में मूर्छित हो जाता है पुनः-पुनः संभालने पर भी संभल नहीं पाता डरकर रोता है, चिल्लाता है, दूसरों से शरण माँगता है किन्तु शक्ति की हीनता से निर्भीक नहीं हो पाता है। अगला कारण है-

4. तत्त्वबोध का अभाव-यदि जीवन में तत्त्वज्ञान नहीं है तो भी व्यक्ति हमेशा भयभीत रहेगा। तत्त्वबोध से आत्म प्रदेशों में शक्ति आती

है तत्त्वबोध यह भान कराता है कि संसार में जो हो रहा है वह सब ठीक हो रहा है, मुझे जो मिला वह भी ठीक, नहीं मिला वो मेरे भाग्य में नहीं था। तत्त्वबोध होता है तो वह सोचता है इस वस्तु का स्वभाव नष्ट होना है, नष्ट हो गयी तो डर किस बात का? तत्त्वबोध होता है तो सोचता है मेरा जन्म हुआ है तो मृत्यु भी होगी डर किस बात का? तत्त्वबोधी व्यक्ति इष्ट वियोग में डरता नहीं घबराता नहीं, संयोग हुआ था तो एक दिन वियोग होना ही था। यदि अनिष्ट का संयोग हो गया तब भी सोचता है यह भी सदा नहीं रहेगा। न इष्ट रहेगा न अनिष्ट रहेगा वह सदैव तत्त्व का ही चिंतन किया करता है। इसलिये उसकी किसी वस्तु में आसक्ति नहीं होती, किसी के प्रति बैर भाव नहीं होता। निरासक्त निश्चिंत रहता है, जो हो रहा है सो ठीक हो रहा है, जो हुआ वह भी ठीक हुआ था, जो होगा सो भी ठीक ही होगा।

कोई अनहोनी मेरे साथ हो नहीं सकती इसलिये मुझे किस बात का डर। मैं अपने कर्त्तव्य का पालन करूँगा तो मेरे साथ अन्याय क्यों होगा, यदि हुआ भी तो मेरे पूर्वकृत कर्मों का ही परिणाम रहा होगा। यदि मैं सदाचार का पालन करता हूँ तो मेरा सुयश फैलेगा, यदि फिर भी निंदा हो जाये तो पूर्वकर्म का उदय भी आ सकता है। इस प्रकार सोचता हुआ वह निर्भीक रहता है। अपने पुण्य-पाप के फल में संतोष धारण करता हुआ, तत्त्वबोध का चिंतवन करता हुआ कि किस द्रव्य का क्या स्वभाव है। पुद्गल का स्वभाव क्या है? जीव का, धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य, काल द्रव्य इन सभी का निरंतर चिंतवन करता रहता है। आकाश सबको अवगाहना दे रहा है। काल सबके परिणमन में सहकारी है। धर्म द्रव्य गति में हेतुभूत है, अधर्म द्रव्य स्थायी करने में हेतुभूत है, पुद्गल का स्वभाव पूरन-गलन है यह कभी शुद्ध होता है कभी अशुद्ध।

जीव ज्ञाता-दृष्टा है, वह जानता है संसार में कोई भी व्यक्ति एक भी परमाणु नष्ट नहीं कर सकता और एक भी परमाणु नया बना

नहीं सकता। जितने द्रव्य थे हैं उतने ही रहेंगे उसमें से न कोई कम हो सकता है न ज्यादा। मेरी आत्मा का कोई एक प्रदेश भी घटा नहीं सकता, मेरी आत्मा में कोई एक प्रदेश बढा नहीं सकता। जब मेरी आत्मा निगोद में थी तब भी मेरी आत्मा में असंख्यात प्रदेश थे, यदि मेरी आत्मा सिद्धालय में भी पहुँच जायेगी तब भी आत्मप्रदेश असंख्यात ही रहेंगे। आत्मा अखण्ड है कोई इसके खण्ड-खण्ड नहीं कर सकता। नरक में इस आत्मा के शरीर के तिल-तिल बराबर टुकड़े भी कर दिये तब भी ये आत्मा नष्ट नहीं हुयी, यह आत्मा अखण्ड थी और अखण्ड ही रहेगी। कोई आत्मा विक्रिया से चाहे पर्वत बराबर शरीर बना ले या चीटीं से भी छोटा बना ले तब भी आत्मा के प्रदेश उतने ही हैं। इसलिये जिसे तत्त्वबोध है वह डरता नहीं, निर्भीक रहता है उसके चेहरे पर कांति और शांति रहती है वह अपने कर्त्तव्य में संलग्न रहता है फिर चाहे उदय में पाप कर्म हो या पुण्य कर्म वह डरता नहीं, कभी अपने अधिकारों का दुरुपयोग करता नहीं, वह जीवंत जीवन जीता है।

जीवन के एक क्षण पहले भी होश में रहता है, जीवन के अंत तक भी प्रसन्न चित्त रहता है। डरपोक व्यक्ति तो मृत्यु का नाम सुनकर ही रोने लगता है किसी भी दु:ख संकट आपत्ति में अधीर हो जाता है।

महानुभाव! ये चार बातें जीवन में ध्यान रखना है जिसके पास निशंकपना नहीं है, सरलता सहजता नहीं है, जिसके पास सामर्थ्य नहीं है, तत्त्वबोध नहीं है वह व्यक्ति भयभीत रहता है। भयभीतपने के चार कारण हैं। इन कारणों के निवारणों को ध्यान में रखकर ही निर्भीक व जीवंत जीवन जीयो। निर्भीकता ही धर्म का मार्ग है इसके बिना धर्म का मार्ग नहीं है। आप सभी का मंगल हो शुभ हो, इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....।।

॥ श्री शांतिनाथ भगवान की जय ॥

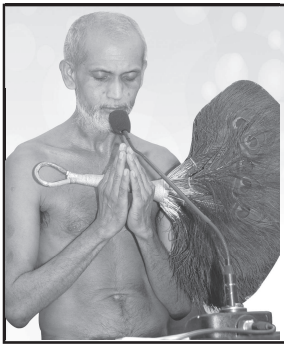

पाप के प्रत्यय

महानुभाव! यह मनुष्य जीवन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, इस मनुष्य जीवन को पाकर के महत्त्वपूर्ण कार्य करने में ही इसकी सफलता और सार्थकता है। जो मनुष्य पुण्य कार्य का पुरुषार्थ करते हैं, अपनी प्रतिभा को प्रगट करते हैं, परमात्म पद को प्राप्त करने के लिये सुपथ पर गमन करते हैं सदैव प्रेम व्यवहार, प्रशम भाव और प्रसन्नता का वातावरण बनाकर के रखते हैं। प्रकृष्ट बोध को प्राप्त प्रबोध और प्रमोद भाव से सहित वह पुरुष देवता के तुल्य लोक में पूज्यता को प्राप्त कर लेते हैं।

किंतु वर्तमान काल में व्यक्ति पुण्य के कार्य तो कम करता है पाप के कार्यों में ज्यादा लग जाता है। यद्यपि जो निमित्त वह पाप के लिये बनाता है उन निमित्तों के माध्यम से पुण्य का भी संपादन किया जा सकता है। वस्तु एक ही है, उसमें उभय शक्ति है। पुण्यरूप भी और पाप रूप भी। पुण्यार्जन करे तब भी कोई हर्ज नहीं, पापार्जन करे तब भी कोई हर्ज नहीं, सीढ़ियाँ जैसे चढ़ने के काम भी आती हैं, उतरने के काम भी आती हैं। पाप के प्रत्यय क्या क्या हैं, आज 'पकार' शब्द को देखते हैं। व्यक्ति पाप क्यों करता है-

पुत्र-के लिये पाप करता है। कई बार व्यक्ति कहता है मुझे अपनी चिंता नहीं मैं तो अपने पुत्र का भविष्य बनाना चाहता हूँ, इसलिये मुझे पाप का धन कमाना पड़ता है झूठ बोलना पड़ता है, चोरी करनी पड़ती है, बेईमानी करनी पड़ती है, अपने पुत्र के शौक पूर्ण करने के लिये। मैं उसे दुःखी नहीं देख सकता, वह जो कुछ भी माँगता है

मुझे देना पड़ता है इसलिये मैं पापों में संलग्न होता हूँ। संसार में ऐसे बहुत से मनुष्य हैं जो पुत्र के निमित्त से पाप करते हैं। चाहे पुत्र की सुख सुविधा के लिये, उसका मन संतुष्ट करने के लिये पाप करता है। उसका पुत्र के प्रति तीव्र मोह है, उससे आशा है कि उससे ही मेरा वंश चलेगा मेरा कुल समुज्ज्वलित होगा इस कारण जीवन भर का उपार्जित धन अपने पुत्र पर ही न्यौछावर करना चाहता है। देश जाना पड़े या विदेश सर्दी सहनी पड़े या गर्मी सब कुछ सहता है पुत्र के लिये। कुछ व्यक्ति संसार में ऐसे हैं जो-

पत्नी-के निमित्त से पाप करते हैं। पत्नी में इतने आसक्त हैं उसने जो कहा वह कार्य करने चल दिये। चाहे वह कार्य उचित है या अनुचित। उसने कहा मैं आपके माता-पिता के साथ नहीं रहूँगी, ठीक है माता-पिता को अलग कर दिया, पत्नी ने कहा-अमुक वस्तु चाहिए, तो पत्नी के आरामों को पूर्ण करने के लिये, भोगोपभोग की अनेक वस्तु प्राप्त कराने के लिये टैक्स की चोरी करना प्रारंभ कर दिया, मिलावट करना प्रारंभ कर दिया, अनीति-अत्याचार-भ्रष्टाचार से धनार्जन करने लगा क्योंकि वह सोचता है मेरे पास इसके अलावा अन्य कोई उपाय नहीं जिससे मैं उसे संतुष्ट कर सकूँ। तो संसार में कुछ लोग ऐसे भी हैं जो पत्नी के लिये पाप करते हैं।

स्त्री लम्पटी व्यक्ति यही कहते हैं तेरे लिये तो मैं नरक भी चला जाऊँगा तेरे लिये अपने प्राणों को भी दे दूँगा और किसी के प्राण ले भी लूँगा। तेरे लिये मैं कोई भी पाप कर सकता हूँ। वह स्त्री चाहे उससे विवाहित हो या वेश्या। जिसमें भी वह आसक्त हो गया, उसके लिये वह पाप करता है।

पैसा-कुछ मनुष्य संसार में ऐसे भी हैं जो पुत्र-पत्नी की परवाह नहीं करते, किन्तु वे परवाह करते हैं कि मुझे तो पैसा चाहिये पैसा, चाहे ऐसा हो या वैसा, कैसा भी हो पर हो पैसा। पैसे के बिना कुछ नहीं है

''इस जग में पैसे की माया, दया धरम सब पैसे में
पैसे में ही माल बिके और इज्जत लुटती पैसे में
बेईमानी और दुराचारी दुष्कर्म छिपे सब पैसे में
ज्ञानी की मति को भ्रष्ट करे हाँ ऐसी ताकत पैसे में।

व्यक्ति सोचता है, पैसा हो तो सब कुछ किया जा सकता है, पैसा है तो मकान, दुकान, हवेली, नौकर चाकर, सेवक आदि सब है, पैसा है तो मैं पद प्रतिष्ठा प्राप्त कर लूँगा। कैसे भी आ जाये पैसा आ जाये यदि मैंने चोरी करके पैसा कमाया और पकड़ा भी गया तो क्या, पैसे देकर छूट जाउँगा, रिश्वत भी ली है सब कहते हैं अन्याय है किन्तु मैं मानता हूँ वह तो अन्य आय है। दूसरी बात यदि रिश्वत लेते पकड़ा जाऊँगा तो रिश्वत देकर छूट भी जाऊँगा। व्यक्ति पैसे के चक्कर में इतना दीवाना हो गया कि सब कुछ पैसा ही है सुबह से शाम तक, शाम से सुबह तक पैसा ही भगवान है, पैसा ही उसका माता-पिता है। पैसे के लिये सब करने को तैयार है। कंजूस व्यक्ति के लिये कहा गया है-'चमड़ी जाये पर दमड़ी न जाये' तो इस पैसे के लिये भी व्यक्ति पाप करता है।

पद-प्रतिष्ठा-कुछ व्यक्ति ऐसे भी हैं जो पुत्र, पत्नी, पैसे के लिये नहीं वरन् ऊँचे पद को प्राप्त करना चाहते हैं। इलैक्शन में जीत, अच्छी नौकरी या अन्य मान-सम्मानीय पद प्राप्त करना चाहते हैं समाज में, संगठन में, समिति में, संस्थान में, सरकार में या किसी कम्पनी में उस पद को प्राप्त करने के लिये, यद्यपि वे उस पद के योग्य नहीं हैं फिर भी मायाचारी से, छल से जो भी प्रपंच बन पड़े उसका प्रयोग करके वह पद हासिल करना चाहता है और इसके लिये पापों का अंबार लगा देता है।

वह नहीं जानता कि कोई भी पद शाश्वत नहीं है हर एक पद नष्ट होने वाला है, संसार में जितने भी पद प्राप्त किये चाहे चपरासी से लेकर प्रधानमंत्री तक का पद ही क्यों न हो सब पद छिन

जाते हैं। कोई भी पद निरापद नहीं है। फिर भी पद के लिये वह कोई भी पाप करने के लिये तैयार हो जाता है। और पद प्राप्त करके उसे मद आ जाता है, इतना ही नहीं पद प्राप्त करके उसे आपत्तियों का सामना भी करना पड़ता है।

प्रशंसा-संसार में कुछ व्यक्ति ऐसे भी हैं जिन्हें प्रशंसा चाहिये लोग हमारी प्रशंसा करते रहें और हम उनके सामने अच्छे बने रहें। पीठ पीछे हम कोई भी पाप का काम करते रहें किन्तु हमें तो सामने जाकर प्रशंसा चाहिये। यदि हजार व्यक्तियों के सामने हमने दान दे दिया तो लोग प्रशंसा करेंगे अरे! देखो ये कितने दानी व्यक्ति हैं, कोई भी समाज में ऐसा कार्य जैसे वृक्षारोपण, प्याऊ खुलवायी या कुछ भी कार्य मात्र प्रशंसा को प्राप्त करने के लिये करता है। जो वास्तव में प्रशंसनीय है उनको तो पहले ही अलग कर दिया और अपनी प्रशंसा प्राप्त करने के लिये छल-कपट, हिंसा-झूठ सभी हथकंडों को अपनाता है। यह प्रशंसा भी एक मीठा जहर है जिसे प्राप्त करने के लिये व्यक्ति पाप कर लेता है।

प्रकृष्ट आरोग्य-कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जो पुत्र-पत्नी-पैसा-पद-प्रतिष्ठा-प्रशंसा इन सबके अतिरिक्त प्रकृष्ट आरोग्य लाभ के खातिर पाप करते हैं। मैं स्वस्थ रहूँ, मेरा शरीर सुंदर दिखाई दे इसके लिये भक्ष्य-अभक्ष्य के विवेक को खोकर गंदे संदे पदार्थों को खाने लगता है। व्यक्ति अपनी शरीर की सुंदरता के लिये उन पदार्थों का प्रयोग करने लगा जिनमें हिंसक वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है। वह स्वयं के आरोग्य के लिये अंडा-मांस का भक्षण करने लगा, पापों से भयभीत न होकर मात्र अपने शरीर के लिये भी कुछ व्यक्ति ऐसे पाप कार्य कर लेते हैं।

पुण्य-संसार में कुछ व्यक्ति ऐसे भी हैं जो पुण्य के लिये, पूजा के लिये भी पाप करते हैं। कैसे, कई जगह ऐसी परम्परा है कि भगवान को संतुष्ट करने के लिये बलि चढ़ाओ, कोई दुःस्वप्न आ गया बलि चढ़ाओ, कोई अच्छा काम करने जा रहे हैं बलि चढ़ाओ, घर में शुभ

अशुभ हो, अनर्थ हुआ हो, कुछ भी हुआ हो बलि चढ़ाओ। ये परम्परा अब इतनी नहीं है पूर्व में बलि की प्रथा अधिक थी। ये पाप संवर्धनी प्रथायें चाहे बलि प्रथा हो या सती प्रथा हो चाहे अन्य ये भी पाप की कारण हैं।

व्यक्ति पूजा के लिये पाप करते हैं, कहते हैं पूजन में पाप कैसा। कई सम्प्रदाय ऐसे हैं जो अपने देवता को बलि चढ़ाकर प्रसन्न करते हैं। वे नासमझ हैं, वे नहीं जानते इससे कोई भगवान संतुष्ट नहीं होता। जैसे कोई भी माँ अपने बेटे का घात देखकर तुम्हें वरदान नहीं देगी वरन् अभिशाप ही देगी ऐसे ही किसी भी देवी देवता के आगे बलि चढ़ाकर आप पाप कमा रहे हैं। कोई व्यक्ति ऐसे भी हैं जो पुण्य की क्रिया का सहारा लेते हैं किंतु बिना विवेक की क्रिया करते हैं तो पाप का बंध करते हैं। जंगल में गये, यह सोचकर कि ये हिंसक पशु है कहीं अन्य जीवों का घात न कर दे, तो बंदूक लेकर उन पशुओं का घात कर दिया, सोचकर गये पुण्य क्रिया करने के लिये, वहाँ किसी के प्राण तो बचाये नहीं किंतु जो चैन से जी रहे थे उन सैकड़ों पशुओं को मार डाला।

महानुभाव! संसार में ऐसे लोगों का अभाव नहीं है जो किसी भी वस्तु की प्राप्ति के लिये पाप कार्य करने को तैयार हो जायें। प्रायःकर के इन्हीं निमित्तों से पाप किये जाते हैं। आप भी अपने जीवन की समीक्षा करो, जीवन की एक-एक बातों को देखते चले जाओ, आप पायेंगे आप जितने भी पाप कर रहे हैं उन पापों के प्रत्यय ये ही हैं।

आप अपने मन से ईमानदारी से पूछना आप जो भी पाप कर रहे हैं यही कहेंगे मैं अपने परिवार के लिये, पैसा कमाने के लिये पद-प्रतिष्ठा पाने के लिये कर रहा हूँ। पुण्य की मोटी आड़ में पापों के बहाने ये व्यक्ति ढूँढ ही लेता है। जो व्यक्ति पाप करता है उससे पुण्य क्रिया नहीं होती पुण्य कार्य करने में उसका मन नहीं लगता। उसे

करना तो पाप ही है, पाप कैसे करे इसलिये कहीं न कहीं ऐसा पर्दा डाल देता है जिसकी आड़ में पाप कर सके।

एक व्यक्ति ने नि:शुल्क भोजनशाला खुलवायी और पहले तो उसमें वह फल-मिठाई बाँटता, धीरे-धीरे उसका विस्तार किया रोटी सब्जी बाँटने लगा, उसमें गरीब लोग खूब आने लगे। अब उस भोजनशाला में अंडा मांस शराब देने लगा, अब वहाँ बदमाश लोग आने लगे। लोग तो प्रशंसा कर रहे हैं कि वह गरीबों को नि:शुल्क भोजन देता है किन्तु अच्छा सा बैनर लगाकर पीछे कितनी हिंसा हो रही है, पाप हो रहा है किसी को नहीं दिख रहा।

महानुभाव! पाप किसी को नहीं छोड़ते आप इन पाप के प्रत्ययों से बचो और परमात्मा की भक्ति करो, पुण्य कार्यों में संलग्न रहो। जिस कार्य को करने से तुम्हारी आत्मा को संतोष मिलता है, सामने वाले को खुशी मिलती है ऐसे कार्य करो। जिसमें किंचित् भी किसी का घात न होता हो, किसी का दिल न दु:खे वही कार्य श्रेयस्कर है। अन्य कार्य तो अनर्थकारी होते हैं, पाप के प्रत्यय बन जाते हैं इसलिये पाप के कार्यों को कभी नहीं करना चाहिये। मैं आपके प्रति ऐसी भावना भाता हूँ कि आप पाप कार्यों से बचें, सद्कार्यों में लगें, भलाई के कार्यों में लगें जिससे आपकी आत्मा परमात्मा बन सके, इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....।।

॥ श्री शांतिनाथ भगवान की जय ॥

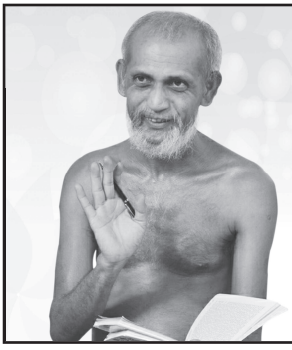

नौ लाख की नौ बातें

महानुभाव! जीवन में अनुशासन का बहुत बड़ा महत्त्व है अनुशासन का अर्थ होता है, शासन के अनुकूल चलना। शासन के प्रतिकूल चलना अनुशासन नहीं है। धारा के अनुकूल चलना ये समझदारी की बात है, धारा के प्रतिकूल चलना ये शक्ति का काम हो सकता है, किंतु समझदारी का नहीं। अनुशासन का पालन समझदार करते हैं और शक्तिशाली व्यक्ति अनुशासन का उल्लंघन करते हैं, अनुशासन का उल्लंघन करने वाला कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो उसे एक दिन पराजय का मुख देखना ही पड़ता है। जीवन में दु:ख और संकट का सामना करना ही पड़ता है, सब कुछ गँवाना ही पड़ता है। अनुशासित व्यक्ति सफलता के शिखर पर पहुँच जाता है किन्तु अनुशासन विहीन व्यक्ति बिखर जाता है। दो किनारों के बीच अनुशासित बहने वाली नदी अपने लक्ष्य तक पहुँच जाती है, किनारों का खण्डन करके बहने वाली नदी मरुथल में अपने अस्तित्व को खो देती है।

ऐसे ही अनुशासन के बंधन में बँधा मानव अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है, दूसरों के लिये हरियाली खुशहाली और समृद्धि को देता जाता है। शब्द जब अनुशासित होते हैं तब वे गीत बन जाते हैं, भजन बन जाते हैं, कवित्त, छंदकाव्य बन जाते हैं। ध्वनि जब अनुशासित होती है तो वह लय और राग बन जाती है, पानी जब अनुशासित होता है तब वह बाँध बन जाता है। लक्ष्य जब अनुशासित होता है तब वह जीत/सफलता बन जाती है। जीवन अनुशासित होता है तो संयम

बन जाता है, योग अनुशासित होता है तब वह महात्मा/परमात्मा बन जाता है, व्यवहार अनुशासित होता है तो शिष्टाचार बन जाता है। जब समूह अनुशासित होता है तो समाज बन जाता है। जब कार्य और कृति अनुशासित होते हैं तब संस्कृति और संस्कार बन जाते हैं। जब व्यक्ति का व्यक्तित्व अनुशासित होता है तो सभ्यता मानी जाती है।

अनुशासित जीवन भले ही प्रारंभ में कुछ कष्टप्रद महसूस हो किंतु वह निश्चित रूप से सुमधुर फलों को देने वाला होता है। अनुशासित जीवन प्रत्येक धर्म, प्रत्येक संस्कृति, प्रत्येक कानून-दण्ड-संहिता-संविधान सिखाते हैं। आप जानते हैं रेलवे स्टेशन पर बजने वाली घंटी अनुशासन का पाठ सिखाती है, स्कूल में बजने वाली घंटी अनुशासन सिखाती है, गाड़ी में बजने वाला हॉर्न अनुशासन सिखाता है, स्टेशन पर रोड पर दिखायी जाने वाली लाल हरी झंडी अनुशासन सिखलाती है। रास्ते पर चलने वाला व्यक्ति दाँये चले या बाँये, इन नियमों का पालन भी अनुशासन का ही एक अंग है। अनुशासित जीवन एक आदर्श जीवन माना जाता है दूसरों के लिये प्रेरक जीवन माना जाता है।

एक व्यक्ति अपने अशुभ कर्म के उदय से अपने व्यापार में सफलता प्राप्त नहीं कर पा रहा था, इसलिये धन कमाने के लिये वह विदेश चला जाता है। अपनी स्त्री, पुत्र , माँ आदि को छोड़कर गया। विदेश जाकर उसने पुरुषार्थ किया और भाग्य का सितारा चमक उठा उसने धन कमा लिया। कई बार ऐसा होता है द्रव्य क्षेत्र काल भाव को बदलने से सौभाग्य दुर्भाग्य में, दुर्भाग्य सौभाग्य में बदल जाता है, पाप पुण्य में, पुण्य पाप में बदल जाता है। कहते हैं प्रभु भक्ति और साधु सेवा करने से विधि का विधान और हाथ की रेखायें भी बदल जाती हैं। उस व्यक्ति ने धन कमाया और कुछ धन वहाँ के राजा के लिये भेंट किया। राजा ने संतुष्ट होकर के उसका सम्मान किया उसकी विनम्रता से बहुत खुश हुआ। उस व्यक्ति ने सोचा इतने धन को लेकर कैसे जाऊँ उसने उस धन को बेचकर कुछ रत्न खरीद लिये, उन रत्नों को लेकर स्वदेश की ओर लौटता है।

मार्ग में उसने सोचा मेरे पास बहुमूल्य रत्न हैं कोई चोरी न कर ले कहीं कोई डाकू मुझे लूट न ले इसलिये मैं किसी ऐसे स्थान का आश्रय लूँ जहाँ पर मेरी सुरक्षा हो और पुण्य का लाभ भी प्राप्त हो। रात्रि हो चुकी थी ग्राम में चक्कर लगाता हुआ एक मंदिर के समीप पहुँचा जहाँ पर कुछ सत्संग की बातें चल रही थी, बहुत सारे लोग वहाँ थे, उसने सोचा यहाँ मेरी सुरक्षा भी होगी और पुण्य की बातें भी सुनने मिलेंगी। वह वहाँ रुका सत्संग भी क्रमशः समाप्ति को प्राप्त हुआ लोग अपने-अपने घरों की ओर जाने लगे। मंदिर में ठहरे संत महात्मा भी विश्राम करने जाने लगे, वह व्यक्ति वहाँ खड़ा रहा। तभी संत महात्मा ने पूछा-आप कहाँ से हो, क्या चाहते हो? उसने कहा-महात्मा जी मैं यहाँ आश्रय चाहता हूँ मेरे पास कुछ रत्न हैं उनकी सुरक्षा चाहता हूँ। उन्होंने कहा-यहाँ तो बहुत खतरा है हम आपके रत्नों की सुरक्षा नहीं कर सकते, यदि किसी को पता चल जाये कि आपके पास रत्न हैं तो आपकी जान के साथ-साथ हमें भी खतरा हो सकता है इसलिये तुम कोई अन्य स्थान देख लो। उसने कहा नहीं महात्मा जी इतनी रात में कहाँ जाऊँ यहीं ठीक हूँ मुझे डर भी लग रहा है। महात्मा जी ने कहा यदि तुम रुके हो तो हमे रात भर जागना पडेगा नहीं तो सोते समय कोई भी आकर रत्न चुरा सकता है इससे हमारे आश्रय की बदनामी भी होगी।

महात्मा ने कहा देखो रात बहुत लम्बी है, यूँ ही जगना तो मुश्किल रहेगा, मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूँ। वह बोला-बहुत अच्छा। महात्मा जी बोले किंतु मैं ये कथा तुम्हें ऐसे ही नहीं सुनाऊँगा मेरी एक कहानी का मूल्य तेरा एक रत्न है, जितनी बातें बताऊँगा उतने रत्न लेता जाऊँगा। उसने कहा ठीक है महात्मा जी। संत ने कथा कहानी क्या सुनायी केवल एक बात बतायी 1. नम्रता की भूमि में ही सम्मान का अंकुर पैदा होता है, यदि तुम सम्मान चाहते हो तो तुम्हारे हृदय में विनय होना चाहिये। जो स्वयं नम्र नहीं होते हैं उनका कहीं सम्मान नहीं होता। बस कहानी पूर्ण हुयी एक रत्न मुझे दो। व्यक्ति ने एक रत्न उन्हें दे दिया।

दूसरी बात बताईये 2. यदि अपनी भलाई चाहते हो तो कभी किसी की बुराई मत करो। कहानी पूरी हुयी, महात्मा जी और कहानी सुनाओ, पुनः बताया 3. यदि हमारे भाग्य का है तो वह साथ रहता है यदि हमारा भाग्य हमें ठोकर देकर जाता है तो उसके पीछे मत दौड़ो वह तुम्हारा नही हो सकेगा। ठीक है महात्मा जी। कहानी पूर्ण हुयी एक रत्न और दिया। महात्मा जी और सुनाईये-वे बोले 4. लक्ष्मी को, सम्पत्ति को कभी शाश्वत मत समझो ये तो पानी के बबूले की तरह से है। कभी भी नष्ट हो सकती है। जी महात्मा जी! पर अभी तो रात बहुत अधूरी है और कहानी सुनाओ बोले 5. यदि छोटा व्यक्ति कभी बड़ा हो जाये तो उसे बड़ा ही मानना छोटा नहीं। अगली कहानी है। 6. जो काम छोटों के द्वारा करने के लायक है वह काम तुम खुद मत करो। जी, एक कहानी और सुनाओ। वे बोले 7. जहाँ मन फट जाये वहाँ ठहरना नहीं चाहिये। वह व्यक्ति सोचता है मेरे पास दो रत्न बचे हैं, क्या करूँ। पुनः बोला महात्मा जी कुछ बात और सुना दो 8. धर्म वासना में नहीं वात्सल्य में होता है। अंतिम कहानी सुनायी 9. सच्चा प्रेम वो होता है जिसमें लड़ना नहीं लाड़ करना होता है। ये 9 बातें उसने महात्मा जी से सुनी और नौ रत्न महात्मा जी को दे दिये।

सब रत्न दे दिये, कोई डर नहीं चिंता नहीं, सोचता है क्या करूँ। मार्ग में जा रहा था, रास्ते में प्यास लगी, एक बावड़ी में जल पीने के लिये उतरा, उस बावड़ी में कोई देव युगल रहता था। वह पानी पीने के लिये ज्यों ही हुआ वह युगल वहाँ प्रकट हुआ, कहने लगा-तुम कौन हो? हमारी आज्ञा के बिना यहाँ पानी नहीं पी सकते। वह बोला-क्षमा कीजिये मुझे यह ज्ञात नहीं था। उसे महात्मा की पहली बात याद आ गयी नम्रता की भूमि में सम्मान का अंकुर पैदा होता है इसलिये वह स्वयं नम्र हो गया और विनम्रता पूर्वक क्षमा याचना करने लगा। देव युगल ने उसकी विनम्रता को देखकर उसे क्षमा कर दिया, और कहा यदि तुम इतने विनम्र नहीं होते तो हम तुम्हें मार देते। वह व्यक्ति पानी पीकर जैसे ही वहाँ से जाने लगा, वे बोले ठहरो! जाने से पहले बताओ कि

हम दोनों में सबसे सुंदर कौन है? वह बहुत आश्चर्य में पड़ गया क्या करना चाहिये। सोचने लगा यदि कहूँगा कि यक्ष सुंदर है तो यह यक्षिणी मुझे जीवित नहीं छोड़ेगी, और यदि कहता हूँ यक्षिणी सुंदर है तो ये यक्ष (देव) मुझे इसी वापिका में उल्टा गाड़ देगा। क्या करूँ तभी उसे दूसरी बात याद आती है ''अपनी भलाई चाहो तो कभी किसी दूसरे की निंदा मत करो''-वह हाथ जोड़कर बोला-सत्य कहूँ-सुंदरता के मामले में तो देवांगनाओं का रूप अप्रतिम होता है, तभी देव से बोला-आपकी भक्ति का कहाँ कोई पार है, उसने दोनों की प्रशंसा की, किसी को भी कम नहीं कहा वे युगल उससे संतुष्ट हुये और 'सत्यं शिवं सुंदरं', कहकर कि तुमने सत्य कहा-वापिका में से कुछ रत्न निकालकर उसे दे दिये, उसने मना किया बस आपकी कृपा दृष्टि ठीक है। देव बोले-जब आप हमें बुलाओगे हम आपकी रक्षा में आयेंगे किन्तु ये वरदान लेकर जाओ, यहाँ पर आये हो तो खाली हाथ नहीं जा सकते। यदि तुम उद्दण्डता का परिचय देते, हमारी निंदा करते तो हम तुम्हें मार देते, पानी भी न पीने देते।

वह व्यक्ति घर पहुँचा अपनी पत्नी, माँ-पुत्र से मिला। उसने देखा पत्नी उसे प्यार तो बहुत करती है पर बात-बात पर झगड़ा करती है उसे अगली बात याद आयी प्रेम का सच्चा रूप लड़ाई में नहीं लाड-प्यार में होता है। मेरी पत्नी लड़ाई ज्यादा करती है प्रेम कम, संभव है ये प्रेम का सही रूप नहीं है, कुछ दिनों बाद देखा पत्नी और उसका नौकर एक साथ हैं। पत्नी कहती थी ये सेवक बहुत अच्छा है धर्मात्मा है तभी उसे अगली बात याद आयी धर्म का रूप वासना में नहीं वात्सल्य में है अब उसे समझ में आया मेरी पत्नी का चाल-चलन ठीक नहीं है। अचानक एक दिन बाढ़ आयी, उसका सब धन बह गया, पत्नी उसे छोड़कर चली गयी उसे पुनः अगली बात याद आयी लक्ष्मी सदा नहीं रहती। वह चिंता मुक्त हो गया जा रही है जाने दो। कुछ समय पश्चात् उसका वही नौकर राजा बन जाता है, उसकी पत्नी भी उसी के साथ होती है, उस व्यक्ति को राजा के यहाँ नौकरी करनी

पड़ी उस राजा ने उसे अपना मंत्री बना लिया किंतु रानी के मन में शंका रहती थी ये मुझे मार न दे। ये हमें मारे इससे पहले बुद्धिपूर्वक हम इसे मार डालेंगे। राजा ने कहा मंत्री आज तुम्हें देवी के मंदिर में श्रीफल चढ़ाने जाना है। वह जाने लगा, उसे मार्ग में बात याद आयी जो काम छोटों के द्वारा करने योग्य है उसे स्वयं मत करो, उसने नौकर को बुलाया और फल भेंट करने भेज दिया। वहाँ कुछ बदमाश थे, जिन्होंने उस नौकर को मार दिया। वह व्यक्ति समझ गया कि यहाँ मुझे खतरा है। वह वहाँ से जाने लगा। राजा ने देखा ये जीवित है वह बहुत कुपित हुआ, उसे अगली बात याद आयी अब यहाँ मन फट गया है, मुझे लौट जाना चाहिये और वहाँ से चला गया।

चलता गया-चलता गया सोच रहा था अब मुझे क्या करना चाहिये, वह अपने भाग्य को आजमाता है और भाग्य की परीक्षा लेते हुये जंगल में जाता है। उसे साधु की बात याद आयी कि धर्म को कभी नहीं छोड़ना चाहिये वह धर्म का आश्रय लेता है। जंगल में जाकर प्रभु परमात्मा की मूर्ति बनाता है, मंदिर बनाता है सेवार्चना करता है। वे यक्ष-यक्षिणी उसकी सहायता करने आते हैं पुनः उसके राज्य की स्थापना होती है। वह उसी सेवक को जो राजा बन गया था बंदी बनाता है, अपनी स्त्री को भी बंदी बनाता है उन्हें दण्डित करता है और राजा बनकर राज्य करता है।

महानुभाव! कहने का अभिप्राय यह है कि जीवन में अच्छी बातों को स्वीकार करना चाहिये। अनुशासन में रहकर धैर्य धारण करके धर्म का सहारा लेकर व्यक्ति किसी भी सफलता को प्राप्त कर सकता है। मनुष्य के लिये कोई भी सफलता असंभव नहीं है। कठिन जरूर है। हम और आप सभी समीचीन सफलता को प्राप्त करने के लिये सम्यक् पुरुषार्थ करें इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....।।

॥ श्री शांतिनाथ भगवान की जय ॥

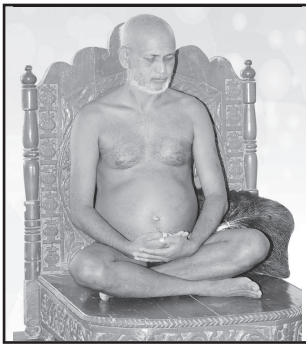

बंधन

महानुभाव! संसार में जितने भी जीव दिखायी देते हैं वे सभी परतंत्र हैं। परतंत्र का आशय होता है, दूसरों के तंत्र में। वे स्वतंत्रता चाहते हैं, अपने तंत्र में रहना चाहते हैं। तंत्र का आशय है बंधन, पराधीनता, गुलामी। संसार में दो प्रकार के बंधन होते हैं-एक बंधन वह जो अधोस्थान से ऊर्ध्वगति की ओर ले जाये, दूसरा बंधन वह जो समतल से नीचे की ओर ले जाये या परिभ्रमण कराये। जैसे कोई व्यक्ति गाय आदि पशु को बाँधकर के इधर-उधर भ्रमण कराता है जिससे वह गाय अपने यथेष्ट स्थान पर नहीं जा पाती या कोई पुलिस वाला किसी अपराधी को बाँधकर नियत स्थान पर डाल देता है जहाँ उसे कष्ट होता है। इच्छा के विरुद्ध उस कैदी को वहाँ रहना पड़ता है प्रतिकूलताओं का सामना करना पड़ता है।

एक बंधन होता है कि लकड़ी आदि बिखरी पड़ी हैं उन्हें उठाकर बाँध दिया, पुष्प बिखरे पड़े हैं उन्हें एक धागे में पिरो दिया। बंधन सभी अवनति या पतन के कारण नहीं होते, कोई-कोई बंधन उत्थान का कारण भी होता है। जैसे रक्षाबंधन रक्षा का संकल्प, व्रतों का बंधन, संयम का बंधन, अनुशासन का बंधन, मान-मर्यादा-संस्कृति का बंधन एवं नियम विधि-विधान आदि का बंधन। जैसे रस्सी में बंधी वह बाल्टी कुयें से ऊपर निकल कर आ जाती है, सुई को धागे के बंधन में डाल दिया जाये तब यदि वह कहीं कचरे में भी गिर जाये तो वह सुई बंधन में बंधी है इसलिए उसे प्राप्त किया जा सकता

है। मानव भी जब श्रुत के बंधन से बंध जाता है तो वह भी संसार में भ्रमित नहीं होता, संसार में लुप्त नहीं होता, संसार में गुमता नहीं है, अपितु अपने गुमे हुये स्वभाव को, गुणों को प्राप्त कर लेता है। क्योंकि गुणों का गुणनफल व्यक्तित्व का समग्र विकास करने वाला होता है।

व्यक्ति का भाग्य जब भागित होता है तब व्यक्ति उससे इतना प्रभावित होता है कि अपने मूल सिद्धान्तों की सुरक्षा करने में भी असमर्थ हो जाता है। एक बंधन ऐसा होता है जो दु:ख की ओर ले जाता है, दूसरा बंधन ऐसा होता है जो सुख की ओर ले जाता है। यह आत्मा संयम-व्रत-नियम-तप आदि के बंधन से बंधी हुयी होती है तब वह आत्मा स्वतंत्रता की ओर जाती है।

महानुभाव! संसार में कोई किसी को रस्सी से बाँधता है, कोई कपड़े से बाँधता है, कोई धागे से बाँधता है, कोई मंगलसूत्र से बाँधता है, कोई कंकण बंधन से बाँधता है कोई अन्य-अन्य प्रकार से बाँधता है। अंगुली को कोई मुद्रिका से बाँधता है, कलाई को चूड़ी-कंगन से बाँधता है, पैरों को पायल से, पैरों की अंगुलि को बिछुए आदि से बाँधता है। किसी के पैर बेड़ी से बाँधे जाते हैं तो किसी के हाथ हथकड़ी से। गले में कोई स्वर्ण की चेन रत्नों का हार पहनता है तो किसी का गला लोहे की सांकलों से बाँधा जाता है। एक बंधन अच्छा लगता है दूसरा बंधन प्रतिकूल लगता है। संसारी प्राणी संसार में जन्म-मरण करते हुये नाना प्रकार के कर्मों को बाँधता है और नाना प्रकार के कर्मों से मुक्त भी होता है।

संसारी प्राणी को संसार में जकड़कर रखने वाले दो बंधन हैं उन दो बंधनों को यदि तोड़ देता है तो अन्य बंधन उसे बाँधने में इतने प्रभावी नहीं हो पाते। कौन से हैं वे बंधन? आचार्य भगवन् गुणभद्र स्वामी जी ने उन दो बंधनों की चर्चा करते हुये लिखा है-

''कान्ता-कनक-सूत्रेण, वेष्टितं सकलं जगत्।
तासु तेसु विरक्तो यो, द्वि भुजा परमेश्वरः॥

संसार में बंधन के दो मुख्य कारण हैं-कान्ता और कनक। वैसे तो व्यक्ति कहता है झगड़े की जड़ तीन-जर, जोरू, जमीन। किन्तु जर और जमीन कनक में लिये जा सकते हैं। यानि एक तो बाह्य धन अचेतन धन जिसके माध्यम से इष्ट सुख की कल्पना की जाती है। दूसरा चेतन पदार्थ जिसके साथ विषय सुख रमण करने की चाह होती है। संसार में नारी जाति बंधन का कारण नहीं है, संसार में बंधन का कारण है जिसके प्रति मन में विषयाभिलाषा हो। पुत्री बंधन में बाँधने वाली न होगी, माँ बंधन में डालने वाली न होगी, बहिन बंधन में डालने वाली न होगी, किन्तु स्त्री जो है वह बंधन में डालने वाली होती है इसलिये आप पढ़ते हैं-

'संसार में विषबेल नारी, तज गये योगीश्वरा।।

वह नारी विषबेल की तरह से है जो वासना के बंधनों में बांधती है। वात्सल्य का बंधन मोक्षमार्ग में बाधक नहीं होता वरन् साधक होता है। गुणों में प्रीती होती है, गुणों के प्रति अनुराग होता हुआ गुणों में अनुगमन करता है तो वह मोक्षमार्गी बन जाता है। और गुणों का गुणनफल ही समझो मोक्षफल बन जाता है। व्यक्ति धर्म को जोड़ता चला जाये और कर्म को ऋण करे यानि आत्मा में धर्म को जोड़े कर्म को घटाये, गुणों का अपनी आत्मा में गुणा करे और दुर्भाग्य को अपनी आत्मा में भागित करे तब नि:संदेह उसका जीवन शिवफल का अधिकारी हो जाता है।

महानुभाव! कान्ता-जो बाँधने वाली होती है। जो केवल कन्त को दोनों भुजाओं से नहीं बाँधती वरन् अंतरंग के राग के पाश से बाँधती है। पाश वह कहलाता है जो दूर रहकर भी बाँध दे। पाश एक बंधन होता है जैसे नागपाश आदि होते हैं इन पाशों से तो शरीर को बाँधा जाता है, बाहु पाश से शरीर का आलिंगन किया जाता है किंतु मोह का पाश ऐसा खतरनाक पाश है जिसे बाँधा जा रहा है वह पास में हो या दूर हो उससे मुक्त हो पाना बड़ा कठिन है। रस्सी के बंधनों को तोड़ा जा सकता है, बाहु बंधनों को छिटक कर छूटा जा सकता

है कोई नाग पाश से बांध दे तो गरुड़ के माध्यम से नागपाश भी दूर हो जाते हैं और भी कोई पाश हो उनसे छूटा जा सकता है किन्तु यह मोह का पाश इतना दृढ़ होता है कि जो लोह की सांकलों को भी तोड़ दे उसके लिये भी मोह पाश को तोड़ना बड़ा कठिन हो जाता है।

संसार में बड़े-बड़े सुभट-वीर-योद्धा, महापराक्रमी हुये जिन्होंने अपने बाहुबल से लोहे की सांकलों को तोड़ दिया, ऐसे भी निर्भीक हुये जिन्होंने व्यक्ति के भुजबंधनों को तोड़ दिया किन्तु मोह के बंधनों को न तोड़ सके। मोह के बंधन कच्चे सूत के धागे की तरह ही क्यों न हों किन्तु उनमें शक्ति इतनी होती है कि वे आत्मा के प्रदेशों को भी बांधने में समर्थ होते हैं। संसारी प्राणी कान्ता से बँधा हुआ है। कान्ता वह है जो कन्त की कान्ति को हरण करने वाली हो कन्त की शांति को हरण करने वाली हो, कन्त को भ्रान्ति में डालने वाली हो, कन्त के लिये क्रान्ति का कारण बने, वह जो प्रकृति से हटाकर विकृति में ले जाये, यदि ज्यादा आसक्ति हो जाये तो वह संस्कृति का लोप करके महाविकृति में डूब जाये। किन्तु एक कान्ता ऐसी भी होती है जो कान्ता स्वयं बंधनों से मुक्त होती है और दूसरों को भी बंधन मुक्त करने में सहायक बनती है। ऐसा भी देखा गया है।

नारी भटकते और गिरते हुये नरों के लिये सहारा भी बनी है वह नारी पुरुष को ऊँचाई तक पहुँचाने में निमित्त व कारण भी बनी है। वह सीढ़ी की तरह से भी बनी है जिसका आश्रय लेकर नर पुंगव श्रेष्ठता की चोटी पर भी पहुँचे हैं और ये बात भी सत्य है कि नारी के नयन में छलकता हुआ जल नर को भावविभोर बना देता है। वह आँसू उसे गर्त की ओर भी ले जा सकते हैं और गर्त से निकालने वाले भी होते हैं। नारी की नयन कटोरी का जल उतना असर दिखा सकता है जितना लवण समुद्र, कालोदधि समुद्र, अन्य-अन्य समुद्रों का जल भी नहीं दिखा सकता। नारी की नयन कटोरी का जल इतना शुद्ध भी हो सकता है कि शायद किसी मानव का चित्त सागरों के जल से शुद्ध न हो पाये और नारी की नयन कटोरी के जल से क्षण भर में शुद्ध हो

सकता है। नारी की नयन कटोरी का जल किसी मानव के चित्त को प्रासुक शुद्ध भी कर सकता है और वह उसे किसी गलती को कराने के लिये मजबूर भी करा सकता है।

कान्ता नर को बाँधने वाली है, वह ऐसे अदृश्य बंधनों से बाँधने वाली है जिन बंधनों के खुलने की संभावना नहीं, मालूम नहीं कहाँ से खुलेंगे। वे गाँठे जो दिखती नहीं है बिना गाँठ की गाँठे भी बहुत मजबूत होती हैं। ऐसे बंधन जो दिख ही नहीं रहे कि कहाँ से कटेंगे, कहाँ से खोलें दिख नहीं रहे, पर हैं जरूर। ऐसे चैतन्य बंधन ज्यादा खतरनाक होते हैं अचेतन बंधनों से। अचेतन बंधन तो शायद वस्तु का परित्याग करने पर छूट भी सकते हैं किंतु चैतन्य बंधनों का दूर कर पाना बड़ा मुश्किल होता है।

महानुभाव! आचार्य महोदय कह रहे हैं-व्यक्ति के मन में दो के प्रति लोभ आता है या तो पंचेन्द्रिय विषयों की अभिलाषा पूर्ण करने के लिये कान्ता के प्रति या कान्ता की मनोभिलाषापूर्ण करने के लिये कनक के प्रति। कनक अर्थात् दौलत-वैभव-संपत्ति व्यक्ति इन दो को प्राप्त करना चाहता है। अनादिकालीन संस्कारवशात् दो में इतना आसक्त हो जाता है कि अपने आप को भूल जाता है कि मैं कौन हूँ, क्या हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ मुझे जाना है? मुझे क्या करना चाहिये क्या नहीं, उस समय इन दो के आवेश में आँखों पर मोह की पट्टी बंध जाती है। आँखों में मिथ्यात्व छा जाता है। वह सत्य से दूर हो जाता है, वह सम्यक्त्व को नष्ट कर देता है और विषयकषायों में पतित हो जाता है।

महानुभाव! कान्ता और कनक इन दो में आसक्त हुआ व्यक्ति, दो के लोभ जाल मे फँसा हुआ व्यक्ति तृष्णा की लपेट में आ जाता है। वह तृष्णा के साथ-साथ कामना-वासना, अभिलाषा का शिकार होता चला जाता है। जहाँ लोभ आता है वहाँ परछाई की तरह से मायाचारी उसके साथ चली आती है। वह मायाचारी जहाँ लोभ कमजोर पड़ता है वहाँ स्त्री की तरह से, उस व्यक्ति को अपने जाल में फँसाती है । लोभ

की पूर्ति के लिये वह उससे मायाचारी कराती है। जब मायाचारी से लोभ की पूर्ति हो जाती है तब पुनः उस माया का सगा भाई 'मान' उसके साथ आ जाता है। यदि उस मान को कोई कष्ट देता है तो मान का छोटा भाई क्रोध युवराज बनकर आ जाता है वह जीवन को तहस-नहस कर देता है।

किसने मेरे भाई मान का बहिष्कार किया, मेरी बहिन मायाचारी का पर्दाफाश किया, कौन है वें, और चारों कषाय एक साथ आ जाती हैं। लोभ के साथ परिग्रह आता है, परिग्रह के साथ विषय सेवन आता है उसके साथ चौर्य आता है, उसके साथ मिथ्याभाषण आ जाता है फिर वह हिंसा पर उतारू हो जाता है। इसलिये ये कान्ता व कनक दोनों बंधन ऐसे हैं जो संसार के बंधन में डालते हैं। आचार्य महाराज यही कह रहे हैं कि वे दो रस्सी कौन सी हैं जिन दोनों रस्सियों ने पूरे संसार को बाँध लिया। वह रस्सी एक है कान्ता रूपी, दूसरी है श्री (कनक) रूपी रस्सी।

स्त्री और श्री दोनों ही खतरनाक हैं इन दोनों के चंगुल से निकल पाना बड़ा कठिन है। बड़े-बड़े योगी साधक महाराजा बड़े-बड़े पुण्यात्मा व्यक्ति भी इनके चंगुल में फँस जाते हैं। आचार्य भगवन् कह रहे हैं **तासु तेसु विरक्तो यो,** जो उस कान्ता व कनक से विरक्त हो गया अर्थात् जिसके चित्त में कान्ता प्रवेश न कर सके, जिसके चित्त में धन का लोभ प्रवेश न कर सके। न कान्ता का राग प्रवेश कर पा रहा है न धन की तृष्णा प्रवेश कर पा रही है, ऐसा व्यक्ति दोनों से विरक्त होकर के केवल अपने स्वभाव के प्रति आसक्त है, मुक्ति के प्रति आसक्त है, अपने आत्म वैभव के प्रति आसक्त है, स्वभाव के प्रति आसक्त है वह परभावों का त्याग करके, कान्ता कनक के बंधनों को तोड़कर के जब शिवराह पर चलता है फिर वह तन पर एक धागा भी नहीं रखता, मन में एक तिनके की भी कामना कांक्षा नहीं रखता सर्वस्व त्याग कर, जो बाहर है उसे बाहर से त्याग देता है जो अंदर

से है उन अंदर के विकारी भावों को त्याग देता है विषयवासनाओं को त्याग देता है। पुनः वह आगे चलता चला जाता है। न मुट्ठी बाँधता है, न चोटी बाँधता है, न कहीं और बंधन बाँधता है वह तो लौंच करके अपने बालों को उखाड़ कर फेंक देता है दोनों भुजाओं को नीचे लटका लेता है और यथाजात दिगम्बर अवस्था में खड़ा हो जाता है। आचार्यवर कहते हैं वह महापुरुष, महात्मा, वह योगी तो भगवान की तरह से है वह वास्तव में परमेश्वर है जिसे कान्ता और कनक का बंधन नहीं बाँध पाया।

महानुभाव! यह बंधन ऐसे ही नहीं टूटता, यह टूटता है तत्त्वज्ञान के द्वारा, प्रभु भक्ति के द्वारा। तत्त्वज्ञान से वैराग्य होता है और भक्ति के माध्यम से जीवन में अपने गुणों की पहचान होती है, अपने व्यक्तित्व की याद आती है। जैसे किसी भक्त को भगवान की याद आती है भगवान की याद करते-करते उसे अपने स्वभाव की याद आती है मेरा स्वभाव भी तो परमात्मा जैसा है मैं अपने स्वभाव को प्राप्त क्यों नहीं कर रहा। संसार के बाह्य पदार्थों में राग करता हुआ क्यों रमण कर रहा हूँ, इस प्रकार वह विचार करता है तब वह दोनों बंधनों को (कान्ता-कनक) तोड़ देता है। तत्त्वज्ञान से कान्ता के प्रति राग छूट जाता है, प्रभु भक्ति से कनक के प्रति राग छूट जाता है। विरक्त होकर के वह अपनी आत्मा का अवलोकन करता है अपनी आत्मा में लीन हो जाता है, वही वास्तव में 'परमेश्वर है।' वह परमेश्वर सहस्र भुजा वाला नहीं सहस्रनेत्र वाला नहीं वरन् सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतरागी है, यथाजात दिगम्बर है, वह परमात्मा है उसके चरणों में प्रणाम करता हूँ।

महानुभाव! आप भी कान्ता कनक के बंधनों से मुक्त होकर अपने आप को परमात्मा बनाओ, सर्व बंधनों को छोड़कर निर्बंध हो जाओ, मुक्त हो जाओ, मोक्ष को प्राप्त करो, ऐसी मंगल भावना आप सभी के प्रति भाता हूँ, इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....।।

॥ श्री शांतिनाथ भगवान की जय ॥